जीवन का स्वाद कैसा !

परलोक में एक बार तीन महापुरुष इकट्ठे हुए। जीवन के सम्बन्ध में चर्चा चल पड़ी; प्रश्न उठा—"जीवन का स्वाद कैसा रहा?"

एक ने कहा—"बड़ा तीखा और कड़वा। सारा जीवन दुःखों की एक गठरी है।"

दूसरे ने कहा—"नहीं; कड़वाहट के साथ जीवन मे मिठास भी थी। सुख और दुःख की मिली-जुली एक चाशनी है जीवन!"

तीसरे ने कहा—"नही, जीवन तो काफी मीठा था। मुझे उसमे कही कड़वाहट नही मिली।"

तीन व्यक्ति, तीन मत; निश्चय नहीं हो सका कि वास्तव में जीवन का स्वाद और रूप कैसा है? निर्णय के लिए तीनों ब्रह्मा जी के पास पहुँचे, क्योंकि उन्होंने जीवन की सृष्टि की है। तीनों महापुरुषों ने अपनी जिज्ञासा ब्रह्मा जी के सामने रखकर पूछा—"आपने जीवन को कैसा बनाया है?"

ब्रह्मा जी बोले—"मैंने जीवन में न कोई स्वाद मिलाया है न रंग। तुम जिस रंग के चश्मे से उसे देखोगे वह वैसा ही दिखाई देगा! अपनी भावनाओं और कर्मों की जैसी चाशनी उसमें मिला दोगे, जीवन का स्वाद वैसा ही हो जाएगा। जीवन संयोगवाही है।"

और वास्तव में ही जीवन एक सफ़ेद चादर के समान है। उसमें रूप और रंग हम स्वयं भरते हैं। हम स्वयं ही उसमें नमक, मिर्च, मसाला या शर्बत मिलाकर उसका स्वाद बनाते हैं

और खुद ही उसमें नीम मिलाकर उसे कड़वा भी बना डालते हैं। अपने जीवन के निर्माता हम स्वयं हैं। जीवन न तो भाग्य से बनता है और न दैवी प्रकोप उसे अभिशप्त करते हैं; न ईश्वरीय वरदान ही जीवन में सुख उँडेलते हैं।

□

जीवन के सन्दर्भ मे अनेक महापुरुषो ने प्रेरणादायक साहित्य लिखा है जिससे जीवन के उन्नयन में भारी सहायता मिलती है, किन्तु इस स्थल पर हम जीवन को लेकर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार करेंगे और वह है जीवन का व्यावहारिक पक्ष। इस सिलसिले में न तो हमें ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की दुहाई देनी है, न अध्यात्मवाद की बारीकियों और गहराइयों का विश्लेषण करना है और न धर्म के स्वरूपों पर वाद-विवाद करना है। हम यहाँ सिर्फ़ व्यावहारिकता को लेकर पाठको से कुछ हल्की-फुल्की दिलचस्प बातचीत करेंगे।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन मे सुख और शान्ति चाहता है और उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ भी होती है। लेकिन क्या वह जीवन में अपना अभीप्सित सब-कुछ प्राप्त कर पाता है?

अनेक लोग नहीं कर पाते। वे जीवन से असन्तुष्ट रहते हैं; परेशान रहते हैं।

प्रश्न उठता है—"ऐसा क्यों होता है?"

क्योकि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक नही होता। अनेक व्यक्ति पूर्वाग्रहो से ग्रस्त रहते हैं; बहुत-से लोग जीवन के बदलते हुए मूल्यो को नही पहचान पाते; कई बार लोग अपने प्रति और दूसरों के प्रति ईमानदार और निष्पक्ष नही रह पाते; इतना ही नही, कई बार व्यक्ति स्वयं अपने को ही नहीं समझ पाता।

और यही सब भूलें जीवन मे कष्ट पैदा करती हैं; व्यक्ति के

मन और शरीर को सालती हैं—और वह जीवन को दु:खों की एक गठरी समझने लगता है।

किन्तु जीवन में आचरण और व्यवहार, विचार और धारणाएँ, भावनाएँ और मान्यताएँ कैसी होनी चाहिएँ इसकी कोई निश्चित आचार-संहिता नहीं बनाई जा सकती। सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण सही होना चाहिए। दृष्टिकोण ही तो जीवन को फीका या रंगीन बनाता है। हमारा दृष्टिकोण ही जीवन को रूप देता है।

आइये, जीवन के कुछ मुद्दों को दृष्टिकोण की कसौटी पर कसकर देखें।

दूसरों से अपेक्षा

दूसरों से अधिक अपेक्षा रखना, अधिक आशा करना एक ग़लत दृष्टिकोण है। सांसारिक व्यवहार में बहुत बार हम अपने परिचितों, सम्बन्धियों और मित्रों से बहुत अधिक आशा लगा बैठते हैं। और जब हमें उनसे आशा के मुताबिक सहयोग और सहायता नहीं प्राप्त होती तो हम निराश तो होते ही हैं, साथ ही उस व्यक्ति के प्रति अनुदार भी हो जाते हैं।

उदाहरण के तौर पर आपको अपने लड़के की इम्तहान की फीस जमा करने के लिए रुपयों की ज़रूरत आ पड़ी और संयोग ऐसा आ पड़ा कि महीने का अन्त है। घर के बजट में पैसे नहीं हैं। तनखा मिलने में अभी एक सप्ताह है। समस्या के हल के लिए आपने चारों तरफ नज़र दौड़ाई और सोच लिया कि अमुक मित्र से रुपये ले आएँगे और वेतन मिलने पर उसे वापस कर देंगे। इस प्रकार मित्र के भरोसे समस्या का हल ढूंढकर आप निश्चिन्त हो गए।

लेकिन आपको जब आप उस मित्र के पास गए तो रुपये उधार देने में उसने अपनी मजबूरी जाहिर कर दी और आप बेहद मायूस हो गए। यह मायूसी आपको क्यों हुई? इसलिए कि आपने उससे जरूरत से ज्यादा आशा की। आपने यह सोचा कि आपका मित्र तो व्यापारी आदमी है उसके पास रुपये की इफरात रहती है, आपको रुपये जरूर दे ही देगा।

मगर तस्वीर के दूसरे पहलू पर भी ध्यान रखना चाहिए। आपको यह भी सोचना चाहिए था कि यदि यहाँ से आपको रुपये न मिल सके तो—। कहीं और से भी इन्तजाम की बात सोचते। खुद ही घर में से इन्तजाम करने की तरफ बुद्धि दौड़ाते, अथवा लड़के के स्कूल में जाकर प्रधानाध्यापक से मिलते, उसे अपनी मजबूरी बताते, सम्भवतः वे ही आपको कुछ हल सुझा देते। न होता तो पत्नी का कोई छोटा-मोटा जेवर रेहन रखकर रुपये जुटाने की बात सोचते। चारों ओर प्रयत्न करने से अवश्य ही समस्या का कोई-न-कोई हल निकलता। सतत प्रयत्नों से कठिन-से-कठिन समस्याएँ हल हो जाती हैं।

मायूसी की हालत आपको गलत तर्क की ओर भी ले जाती है। रुपये न मिलने की दशा में आप भी आम आदमी की तरह यही सोचेंगे कि—"लो! क्या पचास रुपये की बात थी, भले आदमी ने साफ इन्कार कर दिया; हम क्या उसके रुपये रख लेते? ऐसे ही वक्त पर अपने और परायों की पहचान होती है। अजी, अब जमाना ही बदल गया, कौन किस को देता है! सब मतलब की दुनिया है। हमने अमुक समय पर इन हजरत का फ़लाँ काम किया था; और उस वक्त यह काम निकाला था। मगर कौन गिनता है इन बातों को? लिहाज नाम की तो चीज ही दुनिया से उठती जा रही है।" कहना न होगा कि इस प्रकार के तर्क और विचार आपके मित्र को आपकी दृष्टि में

ारा देने वाले होंगे।

मगर आपको पता नहीं कि आपके उस मित्र को किन मजबूरियों के कारण आपको इन्कार करना पड़ा। और इन्कार करते हुए उसे अपनी मजबूरी पर काफ़ी दु:ख भी हुआ। मजबूरी आखिर मजबूरी ही होती है। आपका मित्र व्यापारी व्यक्ति जरूर है लेकिन आपको मालूम नहीं कि परसों ही वह अपने नौकरों को तनखा बाँट चुका है। जिन ग्राहकों और पार्टियों से उसके पास रुपया आने वाला था, उसके आने में काफी देर हो गई। इधर उसे दूसरे लोगों को रुपया भुगतान करना पड़ा। संयोग था कि वे आपको रुपये नहीं दे सके। वर्ना कई दूसरे मौकों पर उसने आपको कई तरह का सहयोग दिया है। लेकिन जब निगाहों पर किसी की तरफ़ से मायूसी का चश्मा चढ़ जाता है तो फिर सारा नजरिया ही बदल जाता है। आपका मन गिन-गिनकर उसके दोष ढूंढने लगता है। उसके गुण और अच्छाइयाँ नजर-अन्दाज हो जाती हैं। और यह एक ग़लत दृष्टिकोण होता है।

यह सब कहने से हमारा आशय यह नहीं है कि कोई व्यक्ति समाज में रहते हुए अपने परिजनों से सहयोग और

हुए नम्बरों से बी० ए० पास किया है। अब यदि वे प्रथम या द्वितीय श्रेणी में पास दूसरे उम्मीदवारों को न लेकर आपके लड़के को चुनते हैं तो स्पष्ट है कि उन पर पक्षपात का आरोप आता है। कोई भी बड़ा अफसर अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए पक्षपात के आरोप से बचाना चाहेगा। ऐसी हालत में आपको भी उनकी पद-मर्यादा का ध्यान रखना उचित है। उस समय ऐसी टीका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए—'अजी साहब ! ऊँची कुर्सी पर बैठकर लोगों की आँखें बदल जाती हैं। करना चाहते तो उनके तो बाएँ हाथ का खेल था। आखिर वे और लोगों की भी तो भर्ती कर रहे हैं। हमारे लड़के को भी ले लेते तो क्या बिगड़ जाता! अजी, बात यह है कि वक्त पर ग़ैर काम आ सकते हैं, अपने काम नहीं आते। लड़का तो आज नहीं कल कहीं-न-कहीं लग ही जाएगा। जिसने पैदा किया है वह खाने को भी देगा; मगर बात देखी जाती है ''।'

आम आदमियों का ऐसे मौके पर यही रुख रहता है, और यह रुख संकुचित दृष्टिकोण का द्योतक है, अर्थात् उन्होंने यदि आपका लड़का लगा लिया होता तब तो वे बड़े आदमी थे, और वे आपकी स्वार्थ-सिद्धि न कर सके तो आपकी दृष्टि में उनका व्यक्तित्व ही गिर गया। बात वही दृष्टिकोण की है; दृष्टिकोण उदार रखिये ! आपका नजरिया विशाल होना चाहिए। आपको यह सोचना चाहिये कि न मालूम उनके सामने क्या मजबूरी आ गई जो वे आपके लल्लू को नौकरी में न ले सके वर्ना वे इस काम को जरूर करते। और वास्तव में भी उनके समक्ष कई तरह की मजबूरियाँ हो सकती हैं, जैसे कि जिस समय आपने उनसे लल्लू की नौकरी के लिए कहा, उस समय कोई स्थान खाली न हो, अथवा उनके दफ्तर में ऊपर से छँटनी करने का हुक्म आ गया हो, या और किसी बड़े अफसर या मिनिस्टर की सिफारिश किसी

ाक्ति को रखने के लिए पहुँच रही हो। इसके अलावा यह भी ा सकता है कि वे स्वयं ही एक आदर्शवादी व्यक्ति हों; भाई-तीजावाद को नापसन्द करते हों, आदि।

इसी तरह और भी अनेक छोटे-मोटे काम और बातें हो कती हैं, जो आपकी आशा के अनुरूप आपके परिजनों से हल न े सकें। तब आपको न तो निराश होना चाहिए और न उनके ति अपने मन में मैल हो लाना चाहिए क्योंकि निराश होने से वयं आपको कष्ट होगा; दूसरों के प्रति मन मैला करने से ीवन में ही मैलापन आने लगता है और यही छोटी-छोटी ातें जीवन में असन्तोष भरती हैं; जीवन को देखनेवाले चश्मे को ूषित करती हैं। फिर हम जीवन की एक ग़लत परिभाषा बनाने गते हैं—'जीवन दु:खों की एक गठरी है।'

प्राय: एक और नारा समाज में बड़ी बुलन्दी के साथ गाया जाता है—'अपने सगे-सम्बन्धी कभी काम नहीं आते; ैरों से फिर भी काम निकल आता है।' यदि निष्पक्ष भाव से विश्लेषण किया जाए तो यह नारा ग़लत और बेमानी है। ऐसी धारणा बना लेने वाले लोग भी यही मौलिक भूल करते हैं;

'पापा जी या भाई साहब' की बातें अब बदल गई हैं।' अतः हमें तब सम्मिलित परिवार की स्थिति से उनके व्यवहार की तुलना नहीं करनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में ही उनके व्यवहार के मूल्य को आँकना चाहिए।

प्रायः ऐसा देखने में आता है कि सगे-सम्बन्धियों में बहुत बैर बढ़ जाता है। यहाँ तक कि फौजदारी और मुकद्दमे-बाजी की नौबत आ जाती है। और फिर जब धन और मन की हानि होकर दोनों के जोश ठण्डे पड़ लेते हैं तो दोनों को अक्ल आती है। वे फिर घुलते-मिलते हैं। मरने-जीने और हारी-बीमारी में फिर एक-दूसरे के काम आते हैं। काश कि उन्होंने पहले ही इस नारे को न अपनाया होता कि 'सगे-सम्बन्धी कभी अपने नहीं होते।' सच तो यह है कि अपने अपने ही होते हैं, बशर्ते कि हमारा खुद का दृष्टिकोण भी उनकी ओर से अपनेपन का हो।

ज़माना ख़राब है (?)

बाहर से एक मित्र आ रहे थे। उन्हें लेने मैं स्टेशन पर गया। मित्र महोदय को स्कूटर या टैक्सी की अपेक्षा ताँगे की सवारी ज्यादा पसन्द थी इसलिए एक पूरा ताँगा कर लिया। सामान ताँगे में लादकर हम दोनों उसमें बैठ गए। ताँगेवाले ने मालिक का नाम लेकर घोड़े को टिटकारी दी। घोड़ा ताँगे को लेकर दिल्ली की चमचमाती कोलतार की सड़क पर दौड़ने लगा। घर पहुँचने तक हमें लगभग तीन मील का फासला तै करना था। हम लोग बातचीत करने लगे।

मित्र बोले—"भाई, क्या बताएँ जीना दूभर हो रहा है। महँगाई आसमान को छू रही है। पैसे लिये फिरे जाओ मगर जरूरत की चीजें नहीं मिलतीं। रोजगार नहीं रहा; लोगों को

नौकरी नहीं मिलती ! कोई करे तो क्या करे ! और छोटे आदमी की तो और भी मुश्किल है। जमाना बड़ा खराब आ गया है।"

इधर तांगेवाला फिल्म का कोई गीत गुनगुनाता हुआ मस्त होकर तांगा हाँक रहा था। हमारे मित्र महोदय स्वभाव से वाचाल और खुशमिजाज थे। उन्होंने तांगेवाले को भी बातचीत में शामिल कर लिया और पूछने लगे—'कहो मियाँ, कैसी गुजर रही है ? शाम तक कितना कमा लेते हो ?"

हम लोग सोच रहे थे, वह भी अपनी मजबूरियाँ गिन-गिनकर *बताएगा, परेशानियों का रोना रोएगा और कहेगा कि बाबू जी ! कुछ मत पूछिए, जो दम गुजर जाय वह गनीमत है।*

लेकिन वह बोला—"बाबू जी ! मालिक का शुक्र है। पन्द्रह-सोलह रोज कमा लेता हूँ। पाँच-छ. रुपये रोज घोड़े को खिला देता हूँ। बाकी में आराम से बच्चो की परवरिश हो जाती है। *मालिक ने मौज दे रखी है।"*

मित्र महोदय को इस उत्तर से काफी आश्चर्य हुआ। वह तांगेवाले से कहने लगे—"अगर ऐसा है तो वाकई तुम बड़े नसीब वाले हो। वर्ना आज तो हर आदमी जमाने की गर्दिश का शिकार है।"

वह कहने लगा—"बाबू जी ! गुस्ताखी माफ हो, इन्सान तो हमेशा से जमाने को रोता आया है। उसने जमाने को अच्छा कब बताया है ? इन्सान नाशुक्रा होता है बाबू जी ! वह खुदा का भी शुक्रगुजार नहीं है।"

कितना बड़ा एक तथ्य उस अपढ़ तांगेवाले ने कह डाला कि हम दोनों ही उसकी दलील सुनकर स्तम्भित रह गये। सचमुच ही इन्सान हमेशा जमाने से असन्तुष्ट रहा है। जब हम बच्चे थे तो अपने बुजुर्गों के मुँह से सुनते थे कि 'बड़ा खराब जमाना आ गया है।' और अब हम जमाने को खराब

बताते हैं। और शायद हमारे बच्चे भी बड़े होकर जमाने को खराब बताएँगे।

कदाचित् यह मनुष्य का स्वभाव बन गया है कि वह बीते हुए युग को बड़ा अच्छा समझता है, उसको याद करता है; वर्तमान से असन्तुष्ट रहता है; और भविष्य के बारे में सदिग्ध रहता है।

वास्तव में जमाने को खराब बताने की भावना के पीछे जीवन के प्रति हमारा असन्तोष छिपा होता है। 'जमाना खराब' कहकर हम अपना 'असन्तोष' व्यक्त करते हैं। और चूँकि समाज में अधिकांश व्यक्तियों द्वारा यह नारा लगाया जाता है, इसलिए यह कहा जाएगा कि अधिकांश लोग अपने जीवन में असन्तुष्ट रहते हैं। असन्तोष दरअसल असफलता से पैदा होता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से सौ में से निन्यानवे व्यक्ति अपने को असफल समझकर जीवन में असन्तोष अनुभव करते रहते हैं। वस्तुतः सफलता का कोई एक मापदण्ड नहीं है—कोई ऐसा स्तर या स्थान नहीं है जहाँ पहुँचकर व्यक्ति अपने को पूर्ण सफल समझ सके। अपनी असफलता या सफलता अथवा जीवन में सुख या दुःख नापने में हमारी दृष्टि आपेक्षिक होती है। हम प्रायः दूसरों के जीवन को देखकर अपने को सुखी या दुःखी समझते हैं। यह कदाचित् मानव-स्वभाव बन गया है कि वह अपने से ऊपर के व्यक्तियों को देखकर अपने को दुःखी समझने लगता है।

एक सामान्य व्यक्ति का उदाहरण लीजिये जो बीवी-बच्चों सहित बिना किसी परेशानी के मज़े में गुज़र-बसर कर लेता है। उसके बच्चे स्कूल भी जाते हैं। रात को उन्हें दूध भी पीने को मिल जाता है। मुहल्ले में उनके परिवार का मान भी है। तीज-त्योहार भी उनके यहाँ बड़ी खुशी और सम्पन्नता से मना लिये

जाते हैं; और भी छोटे-मोटे सुख उन्हें प्राप्त हैं। लेकिन यदि कोई उस व्यक्ति से पूछे कि—"कहो, भाई! कैसी गुज़र रही है?" तो वह अपने दुःखों और अभावों की एक लम्बी सूची सुना देगा। उसका दृष्टिकोण यह होता है कि पड़ोस के लाला धनदास के पास दो कारें हैं; लेकिन मेरे पास मोटर साइकिल भी नहीं है। लोगों के बैंकों में हज़ारों और लाखों रुपये जमा हैं; मेरे पास सौ रुपये भी नहीं बच पाते। आजकल लोग टैरिलीन के कमीज़ और पैंट पहनते हैं परन्तु मेरे और मेरे बच्चों के पास गिने-चुने सूती कपड़े हैं। घर का मकान नहीं, नौकर नहीं। पत्नी के पास सिवाय मामूली गहनों के बढ़िया ज़ेवर भी नहीं हैं। रोज़ कुआँ खोदता हूँ तो रोज़ पानी मिल जाता है। यह भी कोई जीवन है! दौड़-धूप और संघर्ष में रात-दिन चैन नहीं मिलता। न मालूम कभी सुख के दिन आएँगे भी या नहीं!

लेकिन वह यह नहीं देखता कि उसका दूसरा पड़ोसी दो समय खाने के लिए अन्न भी नहीं जुटा पाता; पूरे सर्दी के मौसम में उसके और उसके बच्चों के पास न रज़ाइयाँ थीं, न ऊनी कपड़े थे। पढ़ाई का खर्च बर्दाश्त न करने के कारण उसके बच्चे स्कूल नहीं जा पाते; गलियों में यूँ ही आवारागर्दी करते रहते हैं। और उसकी पत्नी आए दिन बीमार रहती है; अब डॉक्टरों ने उसे तपेदिक बता दी है और वह उसका इलाज कराने में भी असमर्थ है। वस्तुतः उन सामान्य स्थिति वाले बाबू जी को अपने इस पड़ोसी से भी अपनी तुलना करनी चाहिए—इस परिवार की अपेक्षा तो वे काफ़ी सुखी हैं! उन्हें रोटी-कपड़े का तो कोई दुःख नहीं है! इतना ही नहीं, दुःख और सुख कई प्रकार के होते हैं। इन बाबू जी के पीछे वाला मकान एक दूसरे ऐश्वर्यशाली सज्जन का है, जिनकी शहर में काफ़ी जायदाद है; उस जायदाद से किराए ... आमदनी है। घर में कई नौकर-चाकर हैं, कार

था। लेकिन हमने उस व्यक्ति को कभी ग़मगीन नहीं देखा। हमेशा खुशमिज़ाजी से बातचीत करना, खुद हँसना और दूसरों को हँसाना—उसके स्वभाव का एक अंग था। वह और उसका परिवार प्रायः अभावग्रस्त रहता था। पड़ौस में होने के कारण बहुत-सी बातें प्रकाश में आती रहती थीं। एक दिन पता चला कि उसके परिवार में सब लोग दो दिन से नमक से रोटी खा रहे हैं। लेकिन उस व्यक्ति को मित्रों के साथ हँसी-खुशी के 'मूड' में ताश खेलते पाया। परन्तु ताश खेलने का अर्थ यह नहीं था कि वह व्यक्ति अकर्मण्य रहा हो। धनोपार्जन के लिए वह काफी दौड़-धूप और परिश्रम करता था। वस्तुतः विषम परिस्थितियाँ प्रत्येक व्यक्ति के सामने आती हैं। उन परिस्थितियों को लेकर भींकना या ग़मगीन नहीं हो जाना चाहिए वरन् चिन्ताग्रस्त न [illegible]

[illegible]

आती है, जबकि चिन्तन समस्याओं को सुलझाने में भारी सहायता करता है। वह अपढ़ व्यक्ति जिसका हमने ऊपर जिक्र किया है, निश्चय ही जीवन के इस तथ्य को समझता था। वह जीवन के अन्तराल को सींचना जानता था।

अभावों को दूर करने के प्रयत्नों के साथ-ही-साथ जो सुख-सुविधाएँ व्यक्ति को प्राप्त हों, उनका पूरा आनन्दोपभोग भी करना चाहिए। यदि आपको पैसों की तंगी रहती है किन्तु आपका लड़का कुशाग्र-बुद्धि है और परीक्षा में हमेशा प्रथम श्रेणी में पास होता है तो इस देन पर गर्व कीजिए। यदि आपके पास मकान नहीं है और आपकी पत्नी सुशील और सुन्दर है तो अपने को आप सौभाग्यशाली मानिए। मकान हज़ारों लोगों के पास नहीं हैं। यदि आपके कुछ अच्छे मित्र हैं तो इसे भी आप वरदान समझिए। आप

पूर्ण स्वस्थ रहते है, कभी बीमार नही पड़ते तो इस सुख का भी आनन्द-लाभ कीजिए। सच तो यह है कि आपको खोज-खोजकर ऐसे 'पाइंट्स' निकालने चाहिएँ जिनमें आप सुखानुभव करते हैं। व्यक्ति को कभी यह नहीं समझना चाहिए कि वह अभागा है, बदनसीब है और सिर्फ दुःख भोगने के लिए पैदा हुआ है। जीवन के लिए यह चश्मा गलत होता है।

ज़माने का सांस्कृतिक पक्ष

पारिवारिक अथवा व्यक्तिगत समस्याओं के अलावा कई प्रकार की धार्मिक और सांस्कृतिक ऊहापोह को लेकर भी लोग 'खराब ज़माने' से परेशान होने लगते हैं। जन-साधारण में दृष्टिकोण का यह दोष भी सदा से ही चलता आ रहा है। इस स्थिति का विश्लेषण यह है कि व्यक्ति जीवन के बदलते हुए रूप को स्वीकार नही पाता; बदलते हुए मूल्यों को नही पहचान पाता। इसीलिए गुज़रे हुए ज़माने की दुहाई देता है।

ज़माने से असन्तुष्ट रहने वाले लोगों को जीवन और समाज के अनेक पक्षों से शिकायत रहती है। इन शिकायतों को आमतौर पर सुना जा सकता है। जैसे :—

—"अजी साहब, क्या ज़माना आ गया! अब तो चूड़े, चमार, भंगी, मुसलमान सब एक हो गए। कुछ धर्म-कर्म ही नहीं रहा। अब तो होटलों में ये लोग साथ बैठकर खाना खा जाते हैं; चाय पीते हैं; कुछ पता ही नहीं चलता कि कौन जात के हैं। हमारे ज़माने में भंगी कौए का पर लगाकर निकला करता था और 'हटना महाराज! बचना पण्डित जी!' ऐसी आवाज़ लगाकर चलता था और चमार बस्ती से बाहर रहते थे। क्या मजाल थी कि कोई मेहतर या चमार कुएँ पर चढ़ जाए! अब

क्या है ! अब तो सरकार ही मन्दिरों में घुसा रही है।"

—"अब तो साहब, बेशर्मी की हद हो गई ! औरतें सरे-बाजार खुले-मुंह लाली-पाउडर लगाकर बाजारों में घूमती हैं। वर्ना पहले स्त्रियाँ घर मे भी घूंघट-पल्ले में रहा करती थी। अब तो लड़के-लड़कियाँ साथ पढते हैं। औरतें दफ्तरो में काम करती हैं। क्या जमाना आ गया है ! और अभी क्या है ? आगे-आगे देखिए क्या होगा। हमारे बुजुर्ग इसीलिए लड़कियों को पढाना अच्छा नही समझते थे। बहुत हुआ लड़की को चिट्ठी-पत्री तक पढ़ा दिया, रामायण पढा दी। अब तो स्कूलों मे भी उन्हें नाविल और किस्से पढ़ाए जाते हैं।"

—"आजकल क्या पूछिये, बच्चा-बच्चा फैशनपरस्त होता जा रहा है। हरेक को टैरिलीन का सूट चाहिए। और सिर पर तो कोई अब टोपी ओढता ही नहीं। सभी माँग-पट्टे काढ़ने लगे। वर्ना पहले लोग कितने सादे रहते थे ! दो धोती और दो कुर्तों में साल पार हो जाता था। अपना पहनावा ही लोगों ने तर्क कर दिया।"

—"क्या हवा चली है कि लोग सिनेमा के पीछे दीवाने रहते हैं। घर में चाहे खाने को न हो मगर सिनेमा देखने जरूर जाएँगे। वर्ना साहब, हमें अच्छी तरह याद है—भले घर के लोग सिनेमा अच्छा नही समझते थे। और हमारे बाबा तो मरतात् मर गए मगर उन्होने कभी सिनेमा में कदम नही रखा। वह कहते थे जिसे अपनी आँखें चौपट करनी हो वह सिनेमा देखे। उन्होंने सारी उम्र चश्मा नही लगाया। और अब देख लो, जरा-जरा-से बच्चों की आँखों पर चश्मा चढ जाता है।"

इसी तरह किसी को महँगाई से शिकायत है; किसी को घी-दूध न मिलने का शिकवा है; कोई लड़के वालों के उद्दण्ड होने का गिला करता है तो कोई यही सोच-सोचकर परेशान हो रहा है

कि आजकल लोग पूजा-पाठ, नमाज और रोज़े में विश्वास खोते जा रहे हैं। लोग जात-बिरादरी छोड़कर विवाह-शादी करते हैं—यह बात भी प्रायः ज़माने की शिकायत में शामिल रहती है।

खराब ज़माने की यह विचारधारा अनेक अंशों में जीवन के आकर्षण को कम कर देती है। व्यक्ति जीवन में असन्तोष अनुभव करता रहता है क्योंकि जीवन के बदलते हुए क्रम और मूल्यों के साथ वह समझौता नहीं कर पाता।

लेकिन इस स्थिति का वैज्ञानिक विश्लेषण यह है कि ज़माना कभी एक-सा नहीं रहा है। वह हमेशा बदलता है; बदल रहा है और बदलता रहेगा। जैसे-जैसे मनुष्य वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्राप्त करता जा रहा है, वह अपने जीवन की सुख-सुविधाओं को बढ़ाता चला जा रहा है। वह जीवन में पूर्णता लाने की ओर अग्रसर है। नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रकाश में हमारी पुरानी रूढ़िग्रस्त मान्यताएँ ढह जाती हैं, पुराने जमे अन्धविश्वासों की जड़ें हिल जाती हैं और तब हम तिलमिला जाते हैं।

इस सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी है कि ज़माने से व्यक्ति को चाहे जितनी भी शिकायत रहे, परन्तु जीवन-क्रम में आने-वाले इन परिवर्तनों को अन्ततोगत्वा हमें स्वीकार करना ही पड़ता है। इतिहास यह बताता है कि प्रत्येक नई बात का प्रारम्भ में विरोध होता है। लेकिन फिर धीरे-धीरे वही हमारे जीवन का एक अंग बन जाती है। बिजली की रोशनी, पानी की बरफ, रेलगाड़ी, अंग्रेज़ी दवाइयाँ, कोट-पतलून का पहनावा, मोटर, साइकिल, हवाई जहाज, वनस्पति घी आदि अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका शुरू-शुरू में बड़ा विरोध हुआ, लेकिन अब यही चीज़ें हमारे जीवन का अनिवार्य अंग हो गई हैं। तो जब हम अन्ततोगत्वा प्रत्येक नवीनता को स्वीकार करते चले आ रहे हैं

: फिर इनका विरोध अथवा खराब जमाने की शिकायत क्यों ?

अतीत काल के प्रति हमारा मोह इस कारण से भी अधिक ता है कि उस समय के इतिहास का हमने उज्ज्वल पक्ष ही ना या पढ़ा होता है। जैसे—"अमुक राजा के राज में चोरी ही ही होती थी; लोग खुले किवाड़ सोते थे !"—"पुराने लोग बड़े संयम और नियम से रहते थे।"—"फलाने समय में ऐसा होता था और किसके युग में यह खूबियाँ थी।" वस्तुतः ये सब एकपक्षीय बातें हैं। उज्ज्वल पक्ष को उभारकर दिखाया गया है। अन्यथा चोर, व्यभिचारी, कुलटाएँ, डाकू, छली और कपटी लोग हरेक युग में हुए हैं; आज भी हैं और आगे भी रहेंगे। क्योंकि, वास्तविकता यह है कि समाज आचरण की जो मान्यताएँ स्थापित करता है, जो आदर्श बनाता है, उनमें काफी ऊँची उड़ान रहती है। सामान्य लोग काफी प्रयत्न के बावजूद उन तक बहुत कम पहुँच पाते हैं। ऐसी स्थिति में स्वभावतया ही लोग ऊँचे आदर्शों की कसौटी पर पूरी तरह खरे कैसे उतरेंगे (!)

संस्कृति कोई स्थायी वस्तु नहीं है। यह हर युग में बदलती आई है; आज भी बदल रही है और आगे भी बदलेगी। मानव ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक उपलब्धियाँ प्राप्त करता जा रहा है, जैसे-जैसे जीवन के लिए सुख-सुविधाएँ जुटाता जा रहा है, उसी के अनुसार हमारे खानपान, रहन-सहन, भाषा, विचार, पहनावा, शिक्षा-पद्धति तथा जीवन के दूसरे क्षेत्रों में परिवर्तन आता चला जा रहा है। वस्तुतः आज मानव बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ रहा है; वह अन्तरिक्ष और दूसरे ग्रहों में पहुँचने के लिए कटिबद्ध है। इसलिए जीवन-क्रम में भी तेज़ी से परिवर्तन आ रहे हैं।

और ये परिवर्तन शाश्वत हैं; प्राकृतिक हैं। यही परिवर्तन ज़माने को बदलते हैं। बदलते ज़माने को 'खराब ज़माना' कहना कोई सही दृष्टिकोण नहीं है। जो यथार्थ है वह स्वीकार्य होना चाहिए।

शब्द-शक्ति

दूसरों से बातचीत करना लोक-व्यवहार का एक मुख्य अंग है। मीठी और सलीके की बातचीत काम बनाती है। बिगड़े काम भी वाक्-चातुर्य से सँभल जाते हैं। लेकिन बेढंगी बातचीत से समस्याएँ उलझ जाती हैं और कई बार बनते काम बिगड़ जाते हैं। बातचीत करना वास्तव में एक कला है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जहाँ युक्ति-युक्त बातों से भारी मसले हल हो गए और बेतुकी बातों से वैमनस्य बढ़ गए। यह कवि की शब्द-शक्ति ही थी कि उसने नादिर शाह से कत्ले-आम रुकवा दिया; और द्रौपदी के गर्वपूर्ण ताने पर महाभारत खड़ा हो गया।

किन्तु यहाँ आप बड़ी-बड़ी बातों को छोड़िए। दैनिक जीवन की बातचीत ही लीजिये। हमें प्रतिदिन घर और बाहर के लोगों से न मालूम कितनी बातचीत करनी पड़ती है। बहुत बार जब कोई हमारी बात नहीं मानता; बात का मखौल उड़ाता है; हमारी बात का आदर नहीं करता; या कुछ कहने पर तिरस्कार कर देता है; छोटे लोग आज्ञा का उल्लंघन कर देते हैं; या पड़ोसी हमारी बातचीत से रुष्ट हो जाता है; अथवा दुकान पर ग्राहक बातचीत से बिदककर चला जाता है; या बात-ही-बात में पत्नी से झगड़ा हो जाता है तो निश्चय ही मन में क्लेश होता है और चाहे अल्प समय के लिए ही हो, हृदय में एक उदासी और विरक्ति आ जाती है।

वस्तुत: बातचीत के पीछे बहुत-सारे कारण होते हैं; बातचीत का एक माहौल होता है। भिन्न-भिन्न लोगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। अलग-अलग मुद्दों पर बातचीत होती है।

यहाँ हम बातों के उतने विस्तार में नहीं जाएँगे। छोटी-सी इस पुस्तक में उतनी गहराई में जाना सम्भव भी नहीं है। हम यहाँ बातचीत के ढंग और शब्दों के चुनाव पर ही आपसे थोड़ी बातचीत करेंगे। दरअसल बातचीत के सिलसिले में किन्हीं निश्चित नियमों का उल्लेख नहीं किया जा सकता। सोचना और देखना सिर्फ यह है कि बातचीत किस ढंग से करनी चाहिए, शब्दों और भावों का चुनाव कैसा होना चाहिये (!) ताकि बात प्रभावोत्पादक, दिलचस्प और वज़नदार हो।

इस सिलसिले में यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिये कि *आपकी बातचीत ऊब पैदा करने वाली तथा अनावश्यक रूप से* लम्बी-चौड़ी नहीं होनी चाहिये। थोड़े शब्दों में अपना अभिप्राय प्रकट कर देने से बात प्रभावोत्पादक होती है। बहुत-से लोगों की आदत बन जाती है कि वे व्यर्थ ही बात को बहुत लम्बी-चौड़ी करके कहते हैं। यदि वह अपनी लड़की के लिए लड़का देखने जयपुर गये थे और आपने उनसे पूछ लिया—"कहो साहब, जयपुर वाला लड़का कैसा रहा? पसन्द आया या नहीं?"

तो वे सीधा और संक्षिप्त उत्तर नहीं देंगे। बड़ी दूर से बात का सिरा प्रारम्भ करेंगे; कहेंगे—"अजी क्या बताऊँ, जिस दिन मैं जयपुर जाने वाला था, उस दिन अचानक छोटे लड़के की तबीयत बहुत खराब हो गई और उसे सिवाय डॉक्टर चड्ढा के दूसरे की दवा माफिक नहीं आती। उस दिन डॉक्टर चड्ढा मिले नहीं। हारकर डॉक्टर गोविन्दसहाय को दिखाया। बस आप यों देखो कि ज्यों-ज्यों उनकी दवा दी, मर्ज दूना होता चला गया। आखिर उनका इलाज बन्द कर दिया। दूसरे दिन जब चड्ढा साहब आए, उन्होंने इन्जेक्शन लगाया, दवा बदली, तब कहीं जाकर तीन दिन में तबीयत सुधरी। नहीं तो मैं काफी पहले जयपुर चला जाता। अब सुनिये सफर की बात; गाड़ी में इस

इतनी भीड़ थी कि पैर रखने के लिए जगह नहीं। सारा आदमी भरा हुआ था। जैसे-तैसे एक डिब्बे में चढ़े। वहाँ भी ठसाठस भरे थे। इधर-उधर नजर दौड़ाई कि कहीं बैठने जरा-सी जगह मिल जाए तो देखा कि दो पंजाबी पूरी बर्थ पर पड़े हैं, सब लोग खड़े हैं और वे पड़े आराम से लेटे हुए थे।। वो बैठने ही नहीं देते थे। उनसे बड़ा झगड़ा हुआ। बस, यह समझिये कि सारी रात बड़ी परेशानी में कटी, पलक झपकाने का तो काम ही क्या था! राम-राम करके सुबह जयपुर पहुँचे। रात की थकान उतर जाएगी इसलिए सोचा, स्टेशन की स्टाल पर चाय पी ली जाय। मगर साहब! वहाँ चाय क्या मिलती है (!) कोरा गरम पानी था, और नमकीन तो कुछ पूछिये ही मत! ट्रेन की बदबू आ रही थी। बात यह है कि जो खाना-पीना, दिल्ली-मेरठ के इलाकों में मिलता है, वैसा सारे हिन्दुस्तान में नहीं मिलता। मैं भी बहुत-बहुत दूर तक घूम चुका हूँ, सब जगह का खाना-पीना देखा है, मगर हमारे यहाँ के खाने को कहीं का खाना नहीं पहुँच पाता।

खैर जी, स्टेशन से बाहर आए तो ताँगेवालों ने घेर लिया। ताँगे तो यहाँ के अच्छे हैं मगर ताँगेवालों की बोली ही समझ में नहीं आती। न जाने कैसे अटठे-कट्ठे बोलते हैं। बड़ी मुश्किल से एक ताँगेवाले को समझाया कि जौहरी बाजार जाना है। मगर क्या बताएँ, जाना-आना सब बेकार ही रहा। हमारी तरफ से कुछ देर हो गई; वह लड़का घिर गया। वैसे लड़का और घरबार अच्छा था। और साहब, यह तो संयोग की बात होती है। जहाँ की जोड़ी बलवान् है वहीं संयोग होगा।"

बात का जवाब सिर्फ इतना था कि उस लड़के का रिश्ता किसी दूसरी जगह हो गया है। इस [illegible]
बेकार का तूल-तमील देकर इतना बड़ा [illegible]

कि इस तरह की बेतुकी लम्बी-चौड़ी बातचीत से सुनने वाला ऊब

मेरी बात को कोई वज़न ही नही देता।' फल यह होता है कि उसे लोगों से शिकायत रहती है और जिन्दगी मे एक असन्तोष घुस जाता है।

बातचीत की यह बात हालांकि एक छोटी-सी बात लगती है, मगर ऐसी ही छोटी-छोटी बातें जीवन का रूप बनती हैं; जिन्दगी का डिज़ाइन तैयार करती हैं।

बातचीत का एक पक्ष और है—'खरी बात कहना'। कई लोग गर्व से यह कहते सुने जाते हैं—'मैं तो खरी और सच्ची बात कहता हूँ, चाहे किसी को बुरी लगे या भली।' सच बोलना अच्छी बात जरूर है, लेकिन कड़वा सत्य या बेमतलब की खरी बात बजाय लाभ के हानिकारक साबित होती है। कड़वा सत्य कहना नीति की दृष्टि से गलत है। वस्तुत. बात वही बढ़िया होती है जो प्रिय लगे। सच्ची बात भी प्यार के लहजे मे और मीठे शब्दो की चाशनी चढाकर कही जा सकती है। सत्य तो सत्य ही होता है, वह न प्रिय है न अप्रिय। प्रिय और अप्रिय उसे हम स्वयं बनाते हैं। मगर सत्य के प्रति प्राय. लोगों की ऐसी धारणा बनी हुई है कि वे सत्य को कड़वा ही समझते है। कदाचित् इसीलिए यह कहावत बन गई कि 'सच्ची बात से लड़ाई हो जाती है।' अगर आप काने को 'काना' कहेंगे, बदनीयत आदमी को बेईमान कह देंगे तो जरूर ही लड़ाई होगी। क्योंकि यह सब अप्रिय सत्य है। अप्रिय बात से व्यक्ति अपमानित होता है। बात इस तरह कहनी चाहिए कि 'साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।'

मान लीजिये कि आपने अपने किसी मित्र से किसी बहुत

जरूरी काम के लिए कहा। मित्र ने वादा किया कि वह कल शाम को जरूर आपके काम के लिए आपके घर आएगा। अगले दिन आप बड़ी बेचैनी से अपने मित्र की प्रतीक्षा में रहे; लेकिन मित्र महोदय नहीं आये और आपका वह जरूरी काम न हो सका। ऐसी स्थिति में यदि आप खीजकर अपने मित्र से भला-बुरा कहेंगे, वादा पूरा न करने पर उसे जलील करेंगे तो जरूर ही मित्र को वे बातें बुरी लगेंगी; भले ही सारा दोष मित्र का ही है आपका कोई कसूर नहीं। परन्तु इस खरी-खोटी कहने का फल यह भी हो सकता है कि आपकी मित्रता ही टूट जाये अथवा दोनों के दिलों में रंजिश पैदा हो जाए। स्पष्ट है कि ये बातें आपके लिए सुखकर नहीं होंगी, जीवन में कड़वाहट और असन्तोष प्रवेश कर जाएँगे।

वस्तुतः ऐसे मौकों पर थोड़े समय की जरूरत होती है। विचारने की बात यह है कि मित्र के न आने से आपका जरूरी काम तो रुक ही गया। अब आप उसे खरी-खोटी सुनाएँ तो वह वक्त लौटकर नहीं आ सकता। इसलिए अगर आप उसे मीठा उलाहना देते हुए कहें, "मालूम पड़ता है कल तुम वादा ही भूल गये; या कोई मजबूरी आ पड़ी थी? मैंने तुम्हारा काफी इन्तजार किया।"

यह निश्चय है कि मित्र इस मीठे उलाहने से ज्यादा शर्मिन्दा होगा। आगे वह ऐसे मामलों में ज्यादा सतर्क रहेगा। इतना ही नहीं, मिष्ट भाषण से उसके मन में आपके लिए अधिक गुन्जायश हो जायेगी जो दोनों के लिए सुखकर होगी। वस्तुतः यह शब्दों की ही शक्ति होती है जो मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र बना देती है।

एक बार एक सज्जन ने एक दुकान से बहुत सारा फर्नीचर खरीदा। उन्हें बाद में पता चला कि वह दुकानदार बेईमान किस्म का आ[illegible]

अधिक लगाकर भेज देता है। अगर उससे कुछ कहा-सुना जाये तो मानता नहीं। उन सज्जन के पास जब फ़र्नीचर का बिल आया, तो उसमें भी कीमतें ज्यादा लिखी थी। उन्होंने बड़ी शिष्ट और मीठी भाषा में उसे एक पत्र लिखा कि "आपके क्लर्क ने भूल से चीजों के दाम कुछ ज्यादा लगा दिये हैं, कृपया बिल ठीक कराके आप स्वयं उसे जाँचकर भेजें।" उनके इस पत्र का उस दुकानदार पर यह प्रभाव पड़ा कि उसने कीमतें ठीक कीं और क्लर्क की भूल के लिए माफी भी माँगी, जबकि वास्तव में बिल उसने ही बनवाया [illegible]। लेकिन चूँकि शिकायत उसकी प्रतिष्ठा को बचाते हुए की गई [illegible], इस बात का उस पर प्रभाव पड़ा।

[illegible] शब्द और शिष्टता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता [illegible] ती है। बहुत-से लोग जो ऊँचे पदों पर होते हैं, कठोरता [illegible] रतने के पक्षपाती हो जाते हैं। उनका ऐसा विश्वास होता है कि [illegible] ठोरता से अनुशासन बना रहता है, नीचे के लोग ठीक काम [illegible] रते हैं, त्योरियाँ टेढ़ी रहें और वाणी सख्त रहे तो रौब रहता [illegible]। लेकिन ऐसा समझना सभी जगह सही नहीं होता। अक्सर ऐसे [illegible] फ़सर बदमिज़ाज और बुरे समझ लिये जाते हैं। लोगों को उनके [illegible] ति प्रेम और सहानुभूति नहीं होती।

लेकिन ऐसा कहने से हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि अफ़सर [illegible] ोग अपनी मर्यादा का ध्यान न रखें। सफल शासन के लिए [illegible] र्यादा की रक्षा जरूरी होती है। मेल-जोल अधिक न बढ़ाना, [illegible] क्षपात न करना, नियमों की पाबन्दी करना आदि बातें जरूरी [illegible] ोती हैं। किन्तु जब इनके साथ कठोर व्यवहार और कड़वी जबान [illegible] मिल जाती है तो सभी कुछ कड़वा हो जाता है। मेवे को आप नीम [illegible] की चाशनी के साथ मिला दीजिए तो उसका स्वाद भी कड़वा हो जाता है। दूसरी ओर, जब कोई दूसरा अफ़सर भी इन्हीं [illegible] लन करता है, लेकिन व्यवहार में नम्र और

भिड़कता है, तो उसका मनोविज्ञान भी दुख का भागी है। लोग कहते हैं कि मधुर व्यवहार तो बड़ा भला है, बड़ा कठिन है। मिलनसार है। ईमानदार इतना है कि कोई काम बेईमानी से नहीं करता। किसी का नुकसान नहीं करता। ऐसा सिर्फ इसलिए होता है कि उसके अपने मीठे व्यवहार से मनोविज्ञान पर भी किसी की भलाई होती है।

खास जनता के अधिक सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को तो विशेषरूप से मितभाषी और नम्र होना चाहिए। ऐसे ही व्यक्तियों को लोग याद करते हैं।

हमारे एक डाक्टर मित्र हैं जो डाक्टर भारत के प्रधान मन्त्री की तरह व्यस्त रहते हैं। रात के बारह-बारह बजे तक रोगी उनके दवाखाने से नहीं टूटते। वे बराबर उन्हें देखते रहते हैं। सुबह छः बजे से मरीजों को देखने पर से निकल पड़ते हैं। दिन में उन्हें भोजन करने तक का समय नहीं मिलता। ऐसे व्यस्त आदमी का मिजाज चिड़चिड़ा हो जाये तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है। लेकिन उनमें इतना असाधारण संयम देखने को मिलता है कि कई बार आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। कभी उनके माथे पर शिकन नहीं आती। वे हरेक रोगी से इतनी मीठी, नम्रतापूर्ण और हमदर्दी से भरी बातचीत करते हैं कि मानो वह उनके घर का ही आदमी हो। उनका कहना है कि मैं रोगियों की जितनी ज्यादा सेवा करता हूँ, मुझे उतना ही अधिक संतोष और खुशी होती है। उनका नाम लोगों की जबान पर चढ़ गया है। उनके पास बहुत दूर-दूर से रोगी आते हैं। साथ ही उन्होंने बहुत अच्छा पैसा भी कमाया है। मीठे व्यवहार का मीठा फल उन्हें प्रत्यक्षरूप से मिल रहा है।

दुकानदारों, वकीलों, एजेण्टों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए तो नम्र व्यवहार और शिष्ट भाषण विशेषरूप से जरूरी

होता है। यह उनके पेशे में भारी सहायक सिद्ध होता है।

□

कुछ लोगों की यह आदत होती है कि वे दूसरों की हर बात का विरोध करते हैं। उनका विरोध अक्सर तर्क-संगत भी नहीं होता। जैसे आप उनके सामने कहते हैं—

"अमुक डाक्टर बड़ा होशियार है। कल मैं उनके पास अपने लड़के को ले गया था, उसे एक महीने से खाँसी ही नहीं जाती थी। लेकिन उनकी तीन दिन की दवा से ही खाँसी बिल्कुल ठीक हो गई।"

तो वे फौरन कहेंगे—"आपके लड़के को फ़ायदा हो गया होगा, मगर हमने तो उस डाक्टर के कई 'केस' देखे, कोई अच्छा नहीं हुआ। और रामचरन तो उसी के इलाज से मर गया।"

आप अगर कहते हैं कि—"आजकल चोरबाज़ारी की तो हद हो गई है। हर चीज पर 'ब्लैक' हो रहा है।"

तो वे कहेंगे—"ब्लैक तो होगा ही! लोगों के खर्चे पूरे नहीं पड़ते, ब्लैक न करें तो और क्या करें! तुम्हारे पास चीनी का कोटा होता तो तुम भी ब्लैक करते, तुम ही कब मान जाते!"

कोई अगर उनके सामने कहता है—"आज तो सर्दी बहुत ही ज्यादा रही।"

वे उनकी भी फौरन काट करेंगे—"तुम्हें लगी होगी ज्यादा सर्दी। हम तो दिनभर एक बनियान और कुर्ते में घूमते रहे, कोई ज्यादा सर्दी नहीं थी।"

उनके सामने जिक्र आता है कि—"किशनलाल ने अपना मकान बहुत अच्छा बनाया है।"

वे इस बात से भी सहमत नहीं होंगे, कहेंगे—"अजी वाह! क्या अच्छा बनाया है! आधे से ज्यादा तो पीली ईंटें लगवा दी हैं। पूरी चिनाई गारे की है। बीस हजार रुपया लगा दिया; कम

की बात तो पीछे जा पड़ती है। दोनों व्यक्ति आक्षेपों पर उतर आते हैं। कई बार यह बहस गाली-गलौज और मारपीट में समाप्त होती देखी जाती है। ऐसी घटनाएं जीवन में कड़वाहट और व्यर्थ का क्लेश पैदा कर देती हैं। इसलिए बहस से हमेशा बचना चाहिए।

यदि आप बहस में स्वयं एक पक्ष हैं और यह देखते हैं कि दूसरा व्यक्ति बेकार में विरोध कर रहा है तो निश्चय ही आपको बात का रुख बदलकर बहस समाप्त कर देनी चाहिए। जब आप समझते हैं कि दूसरा पक्ष गलती पर है तो आपको वह ग़लती नहीं करनी चाहिए। ये बातें शुरू-शुरू में छोटी दिखाई देती हैं, लेकिन बात का रूप बड़ा होते देर नहीं लगती। थोड़ी सूझ-बूझ से ऐसी अवांछित घटनाओं से बचा जा सकता है।

हँसी-मज़ाक से जहाँ वातावरण में गुदगुदी आती है, हँस-बोलकर लोग जी हल्का करते हैं, वहाँ कई बार हँसी तकरार की जड़ भी बन जाती है। किन्तु इससे हमारा मतलब यह नहीं कि लोग हँसी-मज़ाक ही न करें। वास्तव में हँसी-मज़ाक एक कला है। यदि किसी को इस कला के 'गुर' आते हैं तो वह 'मीर महफ़िल' बन जाता है। उस व्यक्ति के बिना गोष्ठी पूरी नहीं होती; चौकड़ी नहीं जमती। लेकिन अनाड़ीपन से किया हुआ हँसी-मज़ाक अवसर तकरार पैदा कर देता है। इस सम्बन्ध में सिर्फ एक ही बात ध्यान में रखने लायक होती है कि आपका हँसी-मज़ाक ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे किसी का दिल दुखे, कोई अपने को अपमानित महसूस करे। इसके अलावा यदि आप दूसरों से हँसी करते हैं और बुरा नहीं मानते तो आपको भी दूसरों के मज़ाक से चिढ़ना नहीं चाहिए।

हँसी-मज़ाक आमोद-प्रमोद के लिए किया जाता है। इस उद्देश्य को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

बातचीत में दूसरे लोगों की निजी बातों की गहराई में [illegible]
भी अच्छा नहीं होता। कुछ व्यक्तियों में ऐसी आदत पाई [illegible]
कि वे हमेशा दूसरों के राज जानने की कोशिश करते हैं। जैसे
'अमुक व्यक्ति की कितनी आमदनी है? उसके यहाँ खाना [illegible]
बनता है? मियाँ-बीवी में लड़ाई-झगड़ा रहता है! उन [illegible]
में नहीं बनती है! अमुक आदमी की बीवी का जेवर गिरवी [illegible]
गया है! उसने किसी से साल-भर पहले सौ रुपये उधार लिये
और अभी तक नहीं दिये, आदि। ये सभी बेकार की बातें हो[illegible]
जिनके जानने-न-जानने से कोई मतलब हल नहीं होता। इन [illegible]
में कई बार लोग इतने उत्सुक देखे जाते हैं कि वे सीधे प्रश्न पू[illegible]
लगते हैं :—

"क्यों जी! आपको कितनी तनखा मिलती है?"

"कल आप दिनेश के साथ कहाँ जा रहे थे?"

"आप लड़की की शादी क्यों नहीं करते? काफी सयानी [illegible]
गई है!"

सुनने वाला ऐसे प्रश्नों का कभी स्वागत नहीं करता। कु[illegible]
व्यक्ति ऐसे प्रश्न बड़े भद्दे ढंग से भी पूछते हैं :—

"कहो जी! दुकानदारी कैसी चल रही है? हाथ चोरों के [illegible]
[illegible] तो पैसे का ही बनते होंगे?"

"कहिए, अपने भाई के साथ बंटवारे की बात कैसे [illegible]?
बंटवारा हो गया या नहीं?"

"भण्डारी जी के [illegible] के [illegible] के लिए या नहीं?"

हर व्यक्ति के जीवन में कहीं न कहीं कोई-न-कोई [illegible] है।
पर उसका उल्लेख आना पसन्द नहीं करता। इसीलिए ऐसी चर्चा
उसे अच्छी नहीं लगती। बहुत बार लोग ऐसे प्रश्नों का [illegible]
व्यंग्य में दे देते हैं —

"[illegible] के बेटे का [illegible] है और भण्डारी जी के [illegible]

है। आपको क्या मतलब? आप क्यों पूछते हैं?"

ऐसे मौकों पर विचारणीय बात यह होती है कि जब हम अपनी गोपनीयता क़ायम रखना चाहते हैं तो दूसरों के राज़ जानने की कोशिश क्यों करें? वस्तुत: ऐसी बातें अपने घनिष्ठ मित्रों से भी नहीं पूछनी चाहिए। जो लोग ऐसी बातों के अभ्यासी होते हैं वे हल्के समझे जाते हैं। प्राय: लोग उनसे बात करना पसन्द नहीं करते। समाज में उन्हें वांछित आदर नहीं मिलता।

□

नम्रता के समान ही दूसरों को आदर देना और उनकी सराहना करना सफल लोक-व्यवहार का मूलमन्त्र है। आप स्वयं आदर और सम्मान चाहते हैं तो पहले दूसरों का मान कीजिए। निश्चय ही प्रतिदान में आपको भी मान मिलेगा।

कई बार लोग सराहना का अर्थ खुशामद लगाते हैं। किन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। खुशामद एक गिरी हुई बात होती है और उसके पीछे आदमी का उद्देश्य स्वार्थ-सिद्धि होता है, जबकि सराहना एक आदरसूचक और परिष्कृत बात होती है।

समाज में रहते हुए, हमारा काम हर तरह के छोटे-बड़े, ऊँचे-नीचे और अच्छे-बुरे आदमियों से पड़ता है। सराहना और आदर देने का नुस्खा सिर्फ़ कुछ पढ़े-लिखे या ऊँचे कहे जाने वाले लोगों के लिए नहीं है, बल्कि यह मन्त्र हर अदना-आला पर लागू होता है, चाहे वह मजदूर है या अफसर, सेठ जी हैं या कुली है। आम-तौर पर हम लोग मजदूरों, चमारों, मेहतरों और ऐसे ही छोटे कहे जाने वाले लोगों को गिरी हुई दृष्टि से देखते हैं, उनके दायित्वों को स्वीकार नहीं करते। इसीलिए हम उनसे ढंग की बातचीत भी नहीं करते। लेकिन समाज एक मशीन की तरह है। मशीन का हर पुर्जा, चाहे वह छोटा है या बड़ा, मशीन को चालू रखने के लिए ज़रूरी होता है। इसी तरह समाज में इन छोटे कहे जाने

वाले लोगों की भी उतनी ही जरूरत है, जितनी बड़े माने वाले लोगों की है। इस तथ्य को समझ लेने के पश्चात् सामा दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता। फिर मन मस्तिष्क तो सभी में होता है। आदर और अपमान को सभी समझते हैं। इसके अतिरिक्त आज के युग का भी यह तक़ाा कि पिछड़े हुए लोगों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए।

हाँ हमने छोटे-बड़े लोगों की चर्चा सिर्फ़ इसलिए की है आगे जो उदाहरण हमे देना है, उसमें एक ऐसे छोटे पात्र का आता है। अब आदर और सराहना का प्रत्यक्ष उदाहरण सुनिए

मुहल्ले की महतरानी कुछ दिन के लिए गाँव चली गई था एक दूसरी महतरानी को उस मुहल्ले के पाखाने साफ़ करने क काम सुपुर्द कर गई थी। नई महतरानी पुरानी से अच्छा काम करती थी। लेकिन शुरू के कुछ दिनों में ही उसने अच्छा काम किया, बाद में लापरवाही बरतने लगी। हमारी पड़ोसिन बिब्बो देवी एक दिन महतरानी पर बरस पड़ी, बोलीं—"अरी, तू तो बड़ी हरामखोर है। पाखाना कमाती है कि बला टालकर जाती है। सारी टट्टी गन्दी पड़ी रहती है, नाली का पानी तक साफ नहीं करती। याद रखना मैं तुझे एक पैसा नही दूँगी। पाखाना धोने का कभी नाम नही लेती। जो तेरे दिन सीधे हैं तो ठीक काम कर!"

स्पष्ट था कि बिब्बो देवी ने महतरानी के व्यक्तित्व का अनादर किया और उसे अपमानित किया। उसे यह चोट बर्दाश्त न हुई और उसने भी जली-कटी भाषा में जवाब दिया—"तू ही एक बड़ी सफाई वाली बनी है। जैसा हम पे होता है वैसा करते हैं। जब घड़े मे पानी ही नही रहता तो कहाँ से धोऊँ? हम कोई तेरे 'ज़र खरीद' गुलाम है कि इतना रौब दिखाती है? हम सिर पर गन्दगी ढोते हैं, तब पैसा लेते हैं। तू कोई मुफ़्त में बख्शीश दे देती है?"

बिब्बो देवी को तो यह सुनकर जैसे पलीता ही लग गया। वे और तेजी से भड़की—"अरी कमजात, तू हमारे मुँह लगती है ?"

और इसी तरह बात काफी बढ़ गई, मगर नतीजा कुछ नहीं निकला। उल्टा तीन दिन तक महतरानी ने उनका पाखाना ही साफ नहीं किया। और बिब्बो देवी को महतरानी की जवाबदेही कई दिन तक सालती रही। वे जगह-जगह महतरानी की उद्दण्डता और जबान-दराजी की शिकायत करती रहीं।

महतरानी से सफाई की शिकायत हमें भी थी। पत्नी ने एक दिन उससे कहा—"अरी महतरानी ! तू तो बड़ी सफाई से पाखाना कमाती थी। हमने तो बड़ी सुख की साँस ली थी कि चलो, महतरानी अच्छी आ गई। बेचारी बड़ी भली है। मेहनत और होशियारी से काम करती है। पुरानी महतरानी तो बड़ा झिलाती थी। मगर अब तुझे दो दिन से क्या हो गया है ? पाखाने में वह सफाई नहीं रहती ! तेरा जी तो ठीक रहता है ? कुछ तकलीफ तो नहीं है ?"

पत्नी की बातचीत महतरानी को बहुत भायी, उसने बड़ी मुलायमियत से कहा—"मेरी आदत काम से जी चुराने की नहीं है। किसी ठिकानेदार को मुझसे शिकायत नहीं है। बीबी जी ! इन दिनों मेरे दोनों बच्चे बीमार थे। घर पर उन्हें अकेला छोड़कर ठिकाने कमाने आती थी। इसीलिए जल्दी-जल्दी में सफाई छूट जाती होगी। आज जरा उनकी तबीयत ठीक हुई है। सो अब देख लेना कभी आपको टोकने की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

और वास्तव में फिर वह ऐसे अच्छे ढंग से सफाई करती रही कि हमें कुछ कहना ही नहीं पड़ा।

उपर्युक्त दोनों महिलाओं के व्यवहार का अन्तर स्पष्ट है। बिब्बो देवी ने न तो उसके काम की सराहना की, न उसके व्यक्तित्व को आदर दिया उल्टे भर्त्सना की और अपमान किया।

चतुर वकील महोदय ने नुक्ता पकड़ लिया। उन्हें यह समझते देर न लगी कि श्यामनाथ को फुलवारी का विशेष शौक है। उन्होंने श्यामनाथ से फैसले की कोई बात नहीं छेड़ी। अपितु फुलवारी सम्बन्धी उनके शौक की सराहना शुरू कर दी, बोले—"आपने इस छोटी-सी जगह में फुलवारी का बड़ा ही सुन्दर सैटिंग किया है। इसे देखकर तो मेरी तबीयत ऐसी मचल रही है कि रोज़ शाम को यहीं आ जाया करूँ।"

वकील साहब की बात सुनकर श्यामनाथ उत्साह से खिल उठे, बोले—"भाई साहब! मुझे न तो सिगरेट का शौक है, न शराब का; बस, यही एक शौक है, आइये आपको बगीचा दिखाऊँ।" और वह फुलवारी में वकील साहब को लाकर फूलों और पौधों के बारे में बताने लगे।

इधर वकील साहब ने भी उनकी बातों में असाधारण दिलचस्पी दिखाई। लॉन को देखकर कहने लगे—"आपने लॉन में घास क्या लगवाई है बिल्कुल मखमल का गद्दा बिछा दिया है। मैंने यह घास या तो गाँधी जी की समाधि पर देखी थी या अब आपके यहाँ देख रहा हूँ।" वकील साहब जूते-मौज़े उतारकर लॉन की घास पर टहलने लगे, बोले—"बड़ा लुत्फ और ताज़गी मालूम पड़ती है यहाँ नंगे पाँव चलने पर।"

श्यामनाथ ने उन्हें विस्तार से बताया कि कहाँ से उन्होंने यह घास मँगाई, किस स्पेशल तरीक़े से यह लगाई जाती है और क्या-क्या एहतियात बरतनी पड़ती है।

वकील साहब ने फिर फूलों की सराहना शुरू की—"फूलों के चुनाव में भी आपकी पसन्द गजब की है। आजकल लोग ज्यादातर रंग-बिरंगे अंग्रेज़ी फूल ही लगाते हैं। मगर देखता हूँ, आपने गुलाब, मोतिया, चमेली के अपने देशी फूल भी लगाये हैं।"

श्यामनाथ बोले—"अंग्रेज़ी फूल सिर्फ़ खुशनुमा ही लगते हैं,

लेकिन उनमें खुशबू नहीं होगी। मैं तो यह मानता हूँ कि जिसने से पाकर फूलों की खुशबू से अब तक मन मस्त न हो उठे बगीचे का फायदा ही क्या?"

"भाई बात तो सही है।" वकील साहब ने उनका समर्थन किया। श्यामनाथ वकील की बातों से इतने गद्गद हो गए कि उन्होंने अपने नौकर से कहा कि वह वकील साहब के लिए फौरन ही मोतिया के फूलों का एक हार तैयार करे।

उस दिन वकील साहब ने फैसले की बात का श्यामनाथ से कोई चर्चा नहीं किया, केवल उनकी सराहना द्वारा उनका दिल मुट्ठी में कर लिया। वस्तुतः इस तरह उन्होंने फैसले की बातचीत के लिए जमीन तैयार की।

एक-दो दिन बाद जब फिर वकील साहब श्यामनाथ से मिलने आये, तब उन्होंने फैसले का सुझाव रखा और उन्हें श्यामनाथ को राजी करने में ज्यादा देर नहीं लगी, क्योंकि सराहना द्वारा वे श्यामनाथ के व्यक्तित्व का आदर कर चुके थे। इस तरह दोनों परिवार मुकद्दमे की छीछालेदर और धन के अपव्यय से बच गए।

सराहना के साथ ही दूसरों में विश्वास कायम करना भी लोक-व्यवहार और बातचीत का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। थोड़ी सूझ-बूझ से अनेक अप्रिय प्रसंग टाले जा सकते हैं। बहुत-सी परेशानियों का निवारण किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर बलवीर का उदाहरण बड़ा दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण है। श्री बलवीर दिल्ली के एक कालिज में दर्शन के प्राध्यापक थे। घर में पत्नी तथा १० वर्ष का एक पुत्र और ८ वर्षीया पुत्री थी। पुत्र का नाम था रमेश और पुत्री का नाम पुष्पा। दोनों बच्चे स्कूल जाते थे। एक दिन रमेश ने कक्षा में किसी साथी की पुस्तक चुरा ली। चोरी पकड़ी गई। कक्षाध्यापक ने रमेश को भला-बुरा कहा और शिकायत लिखकर उसके घर भेज दी। शिकायत का

पत्र प्रोफ़ेसर साहब की पत्नी माया को मिला। प्रोफ़ेसर महोदय उस समय घर नहीं थे। पत्र पढ़कर माया देवी आग-बबूला [illegible]

और भी वह अपने पिता की जेब से पैसे चुरा चुका था।

शाम को प्रोफ़ेसर साहब के घर आने पर पत्नी ने उन्हे अध्यापक का पत्र दिखाया, रमेश की शिकायत की। प्रोफेसर कुछ देर के लिए विचारमग्न हो गए। अन्त मे उन्होंने एक योजना बनाई और उसे अपनी पत्नी को भी समझा दिया। रात्रि को जब वे क्लब से लौटे तो रमेश खाना खाकर बिस्तर पर लेट चुका था। उसे भय था कि माँ उसकी शिकायत पिता से अवश्य करेंगी और पिता की ओर से उसे ताड़ना सहनी पडेगी। इसलिए उसने ऐसा दर्शाया कि वह सो गया है। प्रोफ़ेसर भी यही चाहते थे। और तभी पत्नी ने उनसे शिकायत की। सुनकर प्रोफ़ेसर कहने लगे—"मुझे यकीन नही आता कि हमारे रमेश ने किताब चुराई होगी। रमेश को मैं अच्छी तरह समझता हूँ। वह इस तरह की गन्दी हरकत कभी नही कर सकता।" पत्नी ने कहा—"तो क्या उसके अध्यापक ने झूठी शिकायत लिख भेजी है?"

"उन्होंने झूठी न लिखी हो, मगर यह हो सकता है कि उस लड़के ने ही मास्टर साहब से रमेश की झूठी शिकायत की हो और मास्टर साहब उसकी ज्यादा छानबीन न कर पाये हों। आखिर वह किसी की किताब क्यों चुराएगा! उसके पास अपनी सब किताबें हैं। इसके अलावा रमेश समझदार है। वह इस बात को अच्छी तरह समझता है कि वह एक अच्छे परिवार और अच्छे माता-पिता का लड़का है। मैं कभी इस बात को नही मान सकता कि हमारा रमेश चोरी करेगा। वह सैकड़ों लड़कों से अच्छा है...।"

सोने का बहाना करते हुए रमेश ने यह सब-कुछ सुना और अगले दिन से ही उसका व्यक्तित्व बदल गया, क्योंकि चतुर प्रोफेसर महोदय ने बालक में अपने विश्वास की स्थापना कर दी थी। साथ ही बालक के अच्छे चरित्र की सराहना भी उसमें निहित थी। रमेश ने स्वयं ही अपने पिता के विश्वास की रक्षा का दायित्व सँभाल लिया।

इस घटना के पश्चात् चोरी आदि की शिकायत तो सुनी ही नहीं गई अपितु रमेश ने पढ़ाई-लिखाई में भी काफी उन्नति दिखाई। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि सूझ-बूझ द्वारा उठाया गया कदम अनेक उलझी हुई समस्याओं को आसानी से हल कर देता है।

□

अपनी-अपनी ही मत कहिए।

अपनी-ही-अपनी बात कहना, दूसरे की न सुनना—यह भी लोकव्यवहार की दृष्टि से एक कमी है; दुर्गुण है। बहुत लोगों में यह आदत पाई जाती है कि वे दूसरों की बात पर ध्यान न देकर अपनी ही बात आगे रखते हैं। मदवदाकर ऐसे लोग ज्यादा बोलने के आदी होते हैं जिनका कि हम पीछे भी जिक्र कर चुके हैं।

जब कोई व्यक्ति अपनी-ही-अपनी बात कहता है और दूसरों की बात को पीछे डालता चला जाता है तो लोग उससे कतराने लगते हैं। वह एक 'बोर' करने वाला व्यक्ति मान लिया जाता है। परोक्ष रूप से अपनी-ही-अपनी कहने का अर्थ यह होता है कि वह व्यक्ति अपने को ही ज्यादा महत्त्व देता है, दूसरों की बात और व्यक्तित्व को वह गौण समझता है। लेकिन सचाई यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की बात में कोई-न-कोई वजन होता है। हमें दूसरों की बात का भी मूल्यांकन करना चाहिए। अनेक बार तो छोटे और बेवकूफ कहे जाने वाले ऐसे बड़े की बात कहते हैं कि सुनकर

दंग रह जाना पड़ता है।

अपनी-ही-अपनी कहने वालों में एक कमी यह भी पाई जाती है कि वे हरेक विषय की बातों में अपना दखल जताते हैं। चर्चा चाहे खेल के मैदान की हो या राजनीति की, बागबानी की हो या ब्लैकमार्केट की, वे जरूर अपना फ़तवा उस सम्बन्ध में देंगे, अपना कोई अनुभव गढ़कर सुना देंगे। लेकिन जानकार लोगों के सामने उनके दखल का थोथापन बहुत जल्दी जाहिर हो जाता है।

अधिक बोलने से प्रायः व्यक्ति की बात में असबद्धता आ जाती है। उसे 'कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा' मिलाना पड़ता है। स्पष्ट है कि ऐसी असम्बद्ध बातें न तो लोगों को प्रिय लगती हैं और न उनमें कोई तत्त्व होता है। सच तो यह है कि बात की कद्र तभी होती है, जबकि वह नपे-तुले शब्दों में और गरिमापूर्वक कही जाए। ऐसी ही बातें व्यक्ति के गौरव और मान को बढ़ाती हैं। थोथी बातें जीवन को ही थोथा बना देती हैं।

ऊँचा स्टैण्डर्ड

आज प्रायः सारे ससार मे ही ऊँचे स्टैण्डर्ड की धूम मची है। प्रत्येक देश अपने रहन-सहन का स्तर ऊँचा कर रहा है। हमारे स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्री नेहरू भी ऊँचे स्तर के रहन-सहन के हामी थे। ऊँचे स्टैंडर्ड का अर्थ है जीवन के लिए अधिक सुख-सुविधाएँ। हमारे देश मे भी बावजूद महँगाई और दूसरी कठिनाइयों के जीवन का स्तर ऊँचा उठता जा रहा है। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इस ऊँचे स्टैण्डर्ड की दौड़ में वास्तविक जीवन का स्तर भी कुछ ऊँचा उठ रहा है? इस सम्बन्ध में एक कथा सुनिए :—

माधवप्रसाद बारह वर्ष से गाँव नहीं गया था। वह सात वर्ष की अवस्था से अपनी नानी के पास मधुपुर गाँव मे रहकर पढा

थे। कभी नीम पर चढ़ते; कभी गुल्ली-डण्डा खेलते; और कभी भैंसों के थनों से दूध की धार अपने मुँह में लगाते थे।

चौधरी प्रीतमसिंह बड़े मिलनसार आदमी थे। आसपास के गाँवों के लोग भी उनका आदर करते थे। मेहमानन-वाजी का चौधरी साहब को बडा शौक था, एक-दो मेहमान सदा ही उनकी बैठक पर बने रहते थे। जो कोई भी उनसे मिलने आता, बड़े प्रेम से उसकी आवभगत करते। अतिथियों को दूध पिलाना वे कभी नही भूलते थे। मौसम के दिनो मे अपने बाग़ के आम चौधरी साहब हर व्यक्ति को खिलाते थे।

उनके यहाँ काम करने वाले नौकर-चाकरों को भी कभी किसी बात की कमी न रहती थी। कोई चौधरी से ईंधन-उपले माँग ले जाता। किसी की नाज-पात से सहायता करते। किसी की लड़की की शादी में कपड़े-लत्ते दे दिये। और छाछ तो उनके घर से रोज़ ही सेरों के हिसाब से बँट जाती थी। चौधरी साहब लोगो की रुपये-पैसे की गरज भी पूरी करते रहते थे; लेकिन वे महाजन की तरह किसी से सूद नही लेते थे। उन पर सब तरह ईश्वर की कृपा थी। हर अदना-आला के काम मे आने वाले आदमी थे चौधरी प्रीतमसिंह।

और आज बारह वर्ष बाद ऐसा संयोग आया कि माधवप्रसाद मधुपुर को चल पड़ा। बीस मील का सफर रेल से तय करना पड़ता था। रेल में बैठे-बैठे उसके मन मे गाँव की पुरानी स्मृतियाँ उभर-उभरकर आ रही थीं। उनके मन मे एक पुलक और गुदगुदी हो रही थी। इन बारह वर्षों में मधुपुर कैसा हो गया होगा? छोटे बच्चे अब जवान हो गए होंगे। बहुत-से बूढ़े मर गए होंगे। बहुत-से लोगों के चेहरे भी अब बदल गए होंगे।

रेल से उतरकर जब माधव गाँव पहुँचने के लिए रिक्शे में ... की तरह का एक और आदमी रिक्शे में

था। कस्बे का स्कूल गाँव से लगभग डेढ़ मील दूर था। वह रो
गाँव से पैदल स्कूल में जाया करता था। हाईस्कूल की परी
उसने वहीं से पास की। कालेज की पढाई के लिए फिर वह शह
में आ गया। उसे नानी का गाँव छोड़े बारह वर्ष हो चुके थे
शहर के कालेज से उसने इण्टर किया, फिर बी० ए० किया
संयोग की बात कि ग्रेजुएट होते ही उसे नौकरी मिल गई, और
वह नौकरी मे फँसकर रह गया। इस सारे समय मे कुछ ऐसी
परिस्थितियाँ रही कि इच्छा रहते हुए भी वह मधुपुर न जा
सका। गाँव मे बीते बालकपन की मधुर यादें और नानी का लाड़-
दुलार उसे बरबस याद आता रहता था। और बहुत बार उसकी
तबीयत उड़कर मधुपुर पहुँच जाने की होती थी।

माधवप्रसाद को जब-तब गाँव से आने-जाने वाले लोग मिलते
रहते थे। वे गाँव का हाल-चाल सुनाते कि अब गाँव में बड़ी
तरक्की हो रही है। नए पक्के मकान बनते जा रहे हैं। कस्बे से
गाँव तक डामर की पक्की सड़क बन गई है और उस पर अब रिक्शे
चलने लगे हैं। गाँव में बिजली आ गई है। उसका स्कूल अब
इण्टर कालेज बन गया है।

गाँव में माधवप्रसाद के घर के पास ही चौधरी प्रीतमसिंह
की हवेली थी। वे गाँव के सम्पन्न व्यक्ति थे। चौधरी का लड़का
श्यामू माधवप्रसाद का मित्र था। दोनों में खूब पटती थी। हवेली
के बाहर ही चौधरी की बड़ी लम्बी-चौड़ी बैठक थी जिसमें
ऊँचे दो-चार पलंग पड़े रहते थे। एक पलंग पर चौधरी
प्रीतमसिंह बैठे लम्बा-चौड़ा हुक्का गुड़गुड़ाते रहते थे। सेहन में
एक ओर घनी छाया का नीम का पेड़ था जिसके नीचे दो गुण्डी
बंधी रहती थी। एक ओर ऊँचे-ऊँचे दो बैलों की जोड़ी नांद
में सानी खाती रहती थी।

हवेली के सेहन में माधव और श्यामू दिन-भर खेलते रहते

थे। कभी नीम पर चढ़ते; कभी गुल्ली-डण्डा खेलते; और कभी भैंसों के थनों से दूध की धार अपने मुँह मे लगाते थे।

चौधरी प्रीतमसिंह बड़े मिलनसार आदमी थे। आसपास के गाँवों के लोग भी उनका आदर करते थे। मेहमानन-वाजी का चौधरी साहब को बड़ा शौक था; एक-दो मेहमान सदा ही उनकी बैठक पर बने रहते थे। जो कोई भी उनसे मिलने आता, बड़े प्रेम से उसकी आवभगत करते। अतिथियों को दूध पिलाना वे कभी नहीं भूलते थे। मौसम के दिनों में अपने बाग के आम चौधरी साहब हर व्यक्ति को खिलाते थे।

उनके यहाँ काम करने वाले नौकर-चाकरों को भी कभी किसी बात की कमी न रहती थी। कोई चौधरी से ईंधन-उपले माँग ले जाता। किसी की नाज-पात से सहायता करते। किसी की लड़की की शादी मे कपड़े-लत्ते दे दिये। और छाछ तो उनके घर से रोज ही सेरों के हिसाब से बँट जाती थी। चौधरी साहब लोगों की रुपये-पैसे की गरज भी पूरी करते रहते थे, लेकिन वे महाजन की तरह किसी से सूद नहीं लेते थे। उन पर सब तरह ईश्वर की कृपा थी। हर अदना-आला के काम मे आने वाले आदमी थे चौधरी प्रीतमसिंह।

और आज बारह वर्ष बाद ऐसा संयोग आया कि माधवप्रसाद मधुपुर को चल पड़ा। बीस मील का सफर रेल से तय करना पड़ता था। रेल में बैठे-बैठे उसके मन में गाँव की पुरानी स्मृतियाँ उभर-उभरकर आ रही थीं। उनके मन मे एक पुलक और गुदगुदी हो रही थी। इन बारह वर्षों में मधुपुर कैसा हो गया होगा? छोटे बच्चे अब जवान हो गए होंगे। बहुत-से बूढ़े मर गए होंगे। बहुत-से लोगों के चेहरे भी अब बदल गए होंगे।

रेल से उतरकर जब माधव गाँव पहुँचने के लिए रिक्शे में बैठा, तो एक चपरासी की तरह का एक और आदमी रिक्शे में

बैठ गया। अधेड़ उम्र, खिचड़ी-से बाल, [illegible], और साँवले रंग का वह आदमी एक साधारण-सी खाकी वर्दी पहने हुए था। डिब्बा चला तो उस आदमी ने माधव से पूछा, "आप कहाँ जायेंगे बाबू जी ?"

"मधुपुर।" माधव ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"क्या आप मधुपुर ही रहते हैं ?" चपरासी ने फिर पूछा।

"अब तो नहीं रहता, लेकिन मैं वहाँ काफ़ी रहा हूँ। आज तो बारह वर्ष बाद मधुपुर जा रहा हूँ।"

चपरासी ने बात और आगे बढ़ाई—"बाबू जी ! मैं भी आज बीस वर्ष बाद मधुपुर जा रहा हूँ।" अब तो चपरासी ने अपनी पूरी कथा कहानी शुरू कर दी—"मैं मधुपुर के पास जो नंगला है वहाँ का रहने वाला हूँ। मगर इधर बीस बरस से तहसील की नौकरी में हूँ। बाबू जी ! जगह-जगह की बदली होती रही सो बाल-बच्चे भी साथ ही रहे। आप मधुपुर में चौधरी प्रीतमसिंह को तो जानते होंगे ?"

"हाँ-हाँ ! उनकी हवेली तो हमारे मकान के पास ही है।" माधव ने कहा, "मगर प्रीतमसिंह तो मर चुके।"

"हाँ, सुना तो मैंने भी है कि वे गुजर गए। मगर बाबू जी ! हीरा आदमी था। मेरी उनके पास बहुत उठ-बैठ थी। जब भी उनके पास गया कभी खाली हाथ नहीं लौटाया। और मुझसे इतना प्रेम करते थे कि मेरे लड़के को कलक्टर से कहकर उन्होंने नौकरी पर लगवाया। बड़े गरीबपरवर आदमी थे। अब तो उनका लड़का श्यामू भी काफी बड़ा होगा। मैंने उसे गोद खिलाया है।"

"हाँ, श्यामू की तो शादी हो चुकी; अब उसके बच्चे हैं।" माधव को लगा कि इस आदमी की सूरत पहचानी हुई-सी है; और फिर उसे याद आया कि उसने छुटपन में उसे प्रीतमसिंह के पास आते-जाते देखा है। तब वह जवान था; लेकिन अब जवानी

उम्र की झुर्रियों में खो गई है।

चपरासी फिर कहने लगा—"आज श्यामू के नाम एक इत्तला लेकर आया हूँ। उस पर दस्तखत कराने हैं। सभी लोगों से गाँव में मिलना भी है; बीस बरस बाद आया हूँ। रात को चौधरी के यहाँ ही रहूँगा। सुबह वापस जाऊँगा।"

जब रिक्शा मधुपुर के अड्डे पर पहुँचा तो शाम होने में कुछ देर थी। दोनों मुसाफ़िरों ने अपनी-अपनी राह ली। माधव ने देखा कि गाँव में बारह वर्ष में काफी परिवर्तन आ गया है। रिक्शे के अड्डे पर चाय-बिस्कुट की दुकानें खुल गई हैं। गाँव के भीतर जाने वाली कच्ची धूलभरी सड़क कोलतार की बन चुकी है और सड़क के किनारे-किनारे बिजली के खम्भे गड़े हैं। बहुत मकान पक्के बन गए हैं और उनमें से रेडियो के फिल्मी गानों की धुन फूट-फूटकर बाहर सुनाई दे रही है।

माधव घर पहुँचा तो नानी ने छाती से लगा लिया। लाड़-दुलार किया, बलैयाँ लीं। उसकी आँखों में आँसू भर आए। फिर वह माधव के लिए खाना बनाने में जुट गई और माधव श्यामू से मिलने चल दिया। जब वह श्यामू की हवेली के अहाते में घुसा तो देखा कि वहाँ का सारा नक़्शा ही बदल गया है। हवेली के अगले हिस्से को आधुनिक कोठी की शक्ल दे दी गई है। सेहन में लॉन बना दिया गया है। एक ओर बैडमिण्टन खेलने का जाल लगा है। जिस नीम के नीचे चौधरी की दो खुण्डी भैंसें झूलती रहती थीं, वहाँ ऊँचे-ऊँचे अल्सेशन कुत्तों का एक जोड़ा बँधा है जो किसी के भी अहाते में घुसने पर बेसाख़्ता भौंकते हैं। स्टैण्डर्ड ऊँचा हो गया है!

सेहन पार करके जब माधवप्रसाद बरामदे में पहुँचा तो देखा कि चौधरी की बैठक की जगह ड्राइंग-रूम बन गया है। अब वहाँ ऊँची-ऊँची खाटें नहीं हैं बल्कि सोफा-सैट पड़े हैं। खिड़की और दरवाज़ों पर बढ़िया पर्दे झूल रहे हैं। बरामदे में आठ-दस साल

और इसी तरह हल्की-फुल्की ऊपर की बातचीत चलती रही। माधव ने महसूस किया कि श्यामू अब उसके साथ गुल्ली-डण्डा खेलने वाला और पेड़ों पर चढ़ने वाला श्यामू नहीं है—अब वह चौधरी श्यामसिंह हो गया है।

इसी बीच नौकर उधर से गुज़रा तो श्यामू ने उसे दो-चार हिदायतें हाकिमाना लहजे में दीं। फिर सहसा माधव से पूछा—"माधव बाबू! जो चाय पीना चाहो तो बनवाऊँ?"

माधव तो बात बड़ी भारी-सी लगी कि उन दिनों हाथ से बर्फी-पेड़ा छीनकर खा जाने वाला श्यामू पूछ रहा है, चाय पीनी हो तो बनवाऊँ (!)।

बरबस माधव ने कह दिया—"नहीं! मैं अभी पीकर आया हूँ।" हालाँकि उसे भूख लग रही थी। लेकिन नई सभ्यता में किसी को बेमतलब चाय पिलाना हिमाकत से ज्यादा और कुछ नहीं है। स्टैण्डर्ड ऊँचा हो रहा है!

माधव धीरे-धीरे यह अनुभव करने लगा कि जैसे वह किसी अजनबी से बातें कर रहा है। वह उठकर चलने ही वाला था कि वह रिश्ते वाला चपरासी दरवाज़े का पर्दा हटाकर कमरे के भीतर झाँका।

"क्या है?" अफसराना आवाज़ में श्यामू ने पूछा।

"तहसील से जमाबन्दी के कागज लाया हूँ। इन पर आपके दस्तखत होने हैं।" चपरासी ने नम्रता से कहा।

"अच्छा! बाहर बैठो, अभी देखेंगे।"

श्यामू ने तभी अपनी डायरी निकाली और माधव से कहा—"यार! अपना पता तो लिखवा दो। शायद हमें कभी कोई काम ही पड़ जाए!"

माधव मुस्कराकर बोला—"काम पड़ने पर तो आओगे ही; कभी बिना काम भी मिलने आ जाया करो।"

श्यामू ने ध्यान को समझकर झेंप-सी उतारी, "नहीं-नहीं, ये बात नहीं है। जरूर आऊँगा। क्या बताऊँ, मुझे वक्त ही नहीं मिलता। अच्छा, जरा इस चपरासी की बात और सुन लूँ, क्या कहता है।"

"मैं भी अब चल रहा हूँ।" कहकर माधव भी श्यामू के साथ ही उठ खड़ा हुआ। दोनों बाहर आए।

चपरासी ने आगे बढ़कर कागज श्यामू के हाथ में दिए और माधव को पहचानकर नमस्ते की। कागज़ों को देख-भालकर जब श्यामू ने दस्तखत करके चपरासी को लौटाए, तो चपरासी मुस्कराता हुआ बोला—"बाबू जी, आपने मुझे पहचाना नहीं, मैं बुन्दू हूँ। मैंने तो आपको गोद खिलाया है। बड़े चौधरी, खुदा उन्हें जन्नत दे, मेरी बड़ी परवरिश करते थे। मेरा तबादला बरेली को हो गया था, तब आप छोटे थे। खुदा जानता है, इन बीस बरसों में मैं बड़े चौधरी को बराबर याद करता रहा।"

और बुन्दू इस आशा से श्यामू के मुँह की ओर देखने लगा कि श्यामू उसे पहचानकर कहेगा, 'अरे बुन्दू मियाँ, तुम हो! अरे भाई बड़े दिनों में मिले, इतने दिन कहाँ रहे?...' और वह श्यामू में भी बड़े चौधरी की आत्मीयता की झलक पा सकेगा। बड़े चौधरी की प्यार-मुहब्बत उसके मन को उस समय आप्यायित कर रही थी।

मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। बड़े आदमियों के लहज़े में श्यामू ने कहा—"अच्छा!" और बस।

लेकिन बुन्दू के मन में शायद पुराने स्नेह की डोर टूटना ही न चाहती थी। उसने फिर श्यामू से कहा—"बाबू जी! बहुत देर से प्यास लगी है, थोड़ा पानी मँगवा दीजिए।"

बड़े चौधरी प्रीतमसिंह के सामने अगर बुन्दू ने पानी माँगा होता, तो वह हवेली से उसके लिए रोटियाँ, गुड़ और छाछ मँगा-

कर कहते—"बुन्दू, तू तो सुबह ही तहसील से चला होगा। हारा-थका आया है, ले रोटी खा ले। खाली पेट पानी नहीं पीते हैं।"

मगर श्यामू ने कहा—"पानी ?" जैसे बुन्दू ने पानी माँगकर उसकी बेइज्जती कर दी हो। फिर दूसरे ही क्षण सामने की तरफ हाथ से इशारा करते हुए बोला—"वह सामने नल लगा है, जाकर पी लो।"

बुन्दू ने नल की ओर देखा और सुस्त कदमों से उधर बढ़ने लगा। नल के पानी का स्वाद पीने से पहले की उसके लिए शायद फीका हो गया था।

माधवप्रसाद और श्यामू हवेली के फाटक की तरफ धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। श्यामू बोला—"देखा आपने कैसी बातें बना रहा था यह ? चाहता है रुपया-धेली ऐंठ ले जाऊँ। मुझे इन बातों से सख्त नफरत है। ये लोग सरकार से इसी काम की तनखाह पाते हैं, मगर फिर भी लोगों को तंग करते हैं।" माधव ने श्यामू के चेहरे की ओर देखा और मुस्कराकर रह गया।

भोला बुन्दू शायद अब भी ऊँचे स्टैण्डर्ड के तत्त्व को नहीं समझा था। नल पर पानी पीकर लौटा तो फिर श्यामू से कहने लगा—"चौधरी ! अब तो दिन छिप गया है। तहसील लौटने का वक्त नहीं रहा। अब तो सुबह ही जाऊँगा। एक खाट मँगवा दें तो यहीं पड़ा रहूँगा। बड़े चौधरी के वक्तों में तो मैं कई-कई दिन घर ही नहीं जाता था। वे इस नीम की जड़ में मेरी चारपाई डलवा देते थे।"

अब तो चौधरी श्यामसिंह का पारा चढ़ गया। वे गरजकर बोले—"तुमने क्या इसे धर्मशाला समझ लिया है ? यहाँ कोई जगह नहीं है। अपना रास्ता लो।"

पर एक करारा

यो किस्सा इस तरह है कि एक जंगल में एक शेर रहता था। शेर तो जंगल का राजा होता है। उसने अपना वज़ीर एक हंस बना रखा था। हंस बड़ा सीधा, सच्चा और दयावान पंछी होता है। वह हमेशा शेर को अच्छे काम करने की सलाह देता था। एक दिन एक गरीब ब्राह्मण उस जंगल मे पहुंच गया। हंस को उसकी गरीबी पर दया आई। उसने अपने राजा शेर से कहकर ब्राह्मण को जंगल के फल-फूल दिलवाए और बहुत-सा धन भी दिलवाया। हंस ने शेर से कहा 'गरीबों पर दया करनी चाहिए।' शेर ने अपने वज़ीर की बात मान ली। ब्राह्मण देवता हंस की सज्जनता पर बड़े खुश हुए और शेर को आशीर्वाद दिया। कुछ दिनों बाद हंस उस जंगल से चला गया तो शेर ने वज़ीर की जगह एक कौआ रख लिया। अब आप जानो, कौआ तो बडा मक्कार होता है। वह शेर को भी मक्कारी की सलाह दिया करता था। कुछ दिन बाद, ब्राह्मण देवता को लड़की की शादी के लिए धन की ज़रूरत पड़ी तो वह अपने जजमान शेर के पास चल दिये। कौए ने उन्हें आता देखा तो शेर से बोला—"हुजूर शिकार आ रहा है, तैयार हो जाएँ।" शेर मुस्तैद होकर बैठ गया। मगर जब उसने ब्राह्मण देवता को देखा तो सहम गया। हंस की नसीहत का कुछ असर शेर के दिल मे बाकी था। सो वह ब्राह्मण से बोला—"महाराज!

हंसा थे सो उड़ गए कागा भए दिवान।
जाउ विप्र घर आपने सिंह किसके जजमान।।

उसने ब्राह्मण से कहा कि हंस तो उड़ गया, आजकल मेरा वज़ीर कौआ है। सो महाराज, अपने घर जाओ। शेर किसका जजमान होता है!"

सो बाबू जी! यही बात यहाँ हुई। चौधरी प्रीतमसिंह हंस आदमी था। और आपने उसके लड़के को देख ही लिया, एक पीढ़ी में ही जमाना कितना बदल गया है! गाँवों मे तो लोग राह

चलते मुसाफ़िर तक की मेहमान-नवाज़ी करते थे। मगर अब नई हवा चल पड़ी है, सब-कुछ बदल गया।"

उपर्युक्त कथा कोई काल्पनिक क़िस्सा नहीं है, बल्कि एक सच्ची घटना पर आधारित है। इसके उद्धरण से लेखक का तात्पर्य ऊँचे स्टैण्डर्ड को कोसना या नई तहज़ीब के खिलाफ़ कोई जिहाद बोलना नहीं है। मतलब सिर्फ़ इतना है कि आज जो हमारे समाज में ऊँचे स्टैण्डर्ड और नई सभ्यता की हवा चल रही है, उसमें काफ़ी खोखलापन है। और इस खोखलेपन से बचने की ज़रूरत है। इस ऊँचे स्टैण्डर्ड के मज़हब में यह झलक मिलती है कि अगर किसी से कोई स्वार्थ-साधन नहीं होता है, तो उससे बात नहीं करनी चाहिए। जिससे ग़रज़ पूरी होनी हो उसे चाय पिलाओ, दावतें दो। बाहरी आडम्बर और 'शो' करके दूसरों पर अपना रौब डालो और काम निकालो। इस मज़हब के अनुसार दया, प्रेम, सहानुभूति बेमतलब की बातें हैं। धन इस मज़हब का सर्वोच्च देवता है। लक्ष्मी का आराधन ही इस मज़हब के लोगों का परम लक्ष्य होता है और दूसरों को मूर्ख बनाकर अपना काम निकालना इसके पुजारियों की नीति होती है।

कदाचित् इस हवा के रुख को लक्ष्य करके ही स्वर्गीय मौलाना अबुल कलाम आज़ाद कहा करते थे—"आज इन्सानियत तहज़ीब का दरवाज़ा खटखटा रही है। हमें देखना है कि कहीं ऐसा न हो कि इन्सानियत भूखों मरकर दम तोड़ दे।"

इसी सन्दर्भ में डा० राधाकृष्णन् ने लिखा है—"आज संसार में जितनी फूट है और जितनी भीषण बुराइयों से वह पीड़ित है, उतना पहले कभी नहीं था। आधुनिक सभ्यता जिसकी विशेषताएँ हैं—वैज्ञानिक स्वभाव, जीवन के प्रति पार्थिव तथा धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण—संसार-भर में सदियों पुराने रीति-रिवाजों को उखाड़ फेंक रही है और सब जगह अशान्ति और वि[illegible]

रही है। नया संसार आवश्यकताओं, आवेगों, महत्त्वाकांक्षाओं और क्रियाकलापों का ऐसा गड़बड़झाला बनकर नहीं रह सकता जिस पर आत्मा का कोई निर्देशन या नियन्त्रण न हो।"

अधिक गहरे विवेचन में न जाकर हम व्यावहारिक बात पर आते हैं। ऊँचे स्टैण्डर्ड से रहना कोई बुरी बात नहीं है, बशर्ते कि हम इस ऊँचे स्टैण्डर्ड का महल इन्सानियत की क़ब्र पर खड़ा न करें।

अगर आपके पास 'कार' है तो यह सौभाग्य की बात है परन्तु कार में बैठकर आप पैदल चलने वालों को हीन दृष्टि से मत देखिए।

यदि आपके पास शानदार कोठी है तो झोपड़ी में रहने वाले ग़रीब पड़ोसी को घटिया मत समझिए।

अगर आपके पास ऊँचा पद और शक्ति है तो अपने अधीनों को ग़ुलाम मत मानिए।

यदि आपके पास विपुल धन है, ऐश्वर्य है तो किसी निर्धन का अनादर मत कीजिए।

अन्यथा आप पर यही कहावत चरितार्थ होगी—

बड़े हुए तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागें अति दूर॥

नीतिकारों का कथन है कि जिस तरह फलों से लदा आम का पेड़ झुक जाता है, इसी तरह ऐश्वर्य पाकर मनुष्य को भी नम्र और समाज के लिए उपयोगी बनना चाहिए।

वस्तुतः ऐश्वर्य और सम्पन्नता की चकाचौंध में हमें ईमानदारी और चरित्र को नहीं भूल जाना चाहिए। इस सिलसिले में एक सच्ची घटना सुनिए:—

बात बम्बई की है। एक सज्जन जब 'पार्किंग' से अपनी कार निकाल रहे थे तो उनसे पीछे खड़ी किसी दूसरे की कार में टक्कर

मिल गई। उनके व सज्जन वहीं का टैक्सा छूट गया और वहाँ छिपक गया। उस सज्जन को जाती हुई कारवालों पर शक हुआ। उन्होंने कार के मालिक की तलाश की और उस रुपयों को उधर खोज गये और सज्जन का मुआवजा उन्हें दें। लेकिन उस कार के मालिक का कोई पता उस समय न चला। उन्होंने एक पर्ची लिखकर कार में डाल दिया जिसमें उन्होंने दफ्तर जाने की सम्भावना की और अपने मालिक का पता लिख दिया था। साथ ही यह भी लिख दिया था कि उनकी अनजान में जो भूल हुई, वह उनके मालिक से आकर उनसे ले लें।

कई दिन बीत गए, और उन्हें यह घटना विस्मृत-सी हो गई। कोई व्यक्ति उनके पास नहीं आया। लगभग एक सप्ताह बाद एक वृद्ध पारसी सज्जन उन्हें ढूँढ़ते हुए कार्यालय में पहुँचे और उनके सामने वह पर्चा रखा। उन्होंने क्षमा माँगते हुए पूछा कि नुकसान के कितने पैसे देने हैं? इस पर वह वृद्ध पारसी महोदय बोले—"अरे नहीं साहब, मैं आपसे कुछ लेने नहीं आया हूँ। मैं तो आपके दर्शन करने आया हूँ। पर्चा पढ़कर मैंने सोचा कि आज के ज़माने में यह कौन सज्जन है जो इतनी ईमानदारी से पर्चा और पता लिखकर छोड़ गए हैं। वर्ना वह चुपचाप कार लेकर खिसक भी सकते थे। मैं आपकी सच्चाई और ईमानदारी के लिए पुरस्कार देने आया हूँ।" और यह कहकर वृद्ध पारसी ने उन्हें गांधी जी की एक सुन्दर मूर्ति भेंट की।[1]

अब पाठक स्वयं ही उस ईमानदार सज्जन के मनोगत भावों का अनुमान लगा सकते हैं कि इस सच्चाई और ईमानदारी के पुरस्कार से उनका हृदय कितना आप्यायित हुआ होगा। ऊँचे स्टैण्डर्ड का व्यक्ति होते हुए भी उसने सच्चाई को जीवन में प्राथमिकता दे रखी थी।

१. यह घटना बम्बई के एक मासिक पत्र में छपी थी।

o

परोपयोगी कैसे बनें !

दूसरों के काम ग्राना बहुत बडा मानवीय गुण है। इस विषय के विवेचन में जाने से पहले एक ग्रौर कथानक सुनिए—यह कथानक भी तथ्यों पर ग्राधारित है। कथा नवाब जफरुल्ला खाँ की है जो मन की गहराइयो को छूती है।

बात स्वराज्य मिलने से पहले की है। नवाब जफरुल्ला खाँ दस गाँव के सालिम इलाक़े के ज़मीदार थे। शराफ़त, हमदर्दी, सच्चाई और परदुःख-कातरता जैसे उनमें कूट-कूटकर भरी थी। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नवाब के खिताब से सुशोभित किया था। इतने बड़े ग्रादमी होकर भी स्वभाव में बच्चों की-सी सरलता थी; घमण्ड छू तक न गया था। उनका व्यक्तित्व भी ग्राकर्षक था। इकहरा बदन, दर्म्याना कद, गोरा-चिट्टा रंग, पानीदार ग्राँखें, तराशी हुई मुख्तसिर-सी सफ़ेद दाढी। जाडो मे भी ग्रलीगढ-कट का पाजामा, लखनऊ का बेलदार कुर्ता ग्रौर उस पर एक ऊनी वास्कट पहनते थे। सबसे हँसकर बात करते। उनके एक बार के सम्पर्क से ही व्यक्ति बडी ग्रात्मीयता का ग्रनुभव करता था। नवाब साहब की दिली मंशा यह रहती थी कि वे ज्यादा-से-ज्यादा काम ग्रा सकें। वे ग्रपनी भलमनसाहत के लिए पूरे इलाके में मशहूर थे।

बाद को वे स्पेशल ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी बना दिए गए थे ग्रौर इस पद से उन्होंने हमेशा इन्साफ करने की कोशिश की। हालाँकि नवाब साहब पढ़े-लिखे ज्यादा न थे, लेकिन जहन बहुत ग्रच्छा था। बहुत जल्दी मामले की तह पर पहुँच जाते थे। वे मुक़द्दमों का फ़ैसला एक ग्रजीब ग्रन्दाज़ से करते थे। उनके इन्साफ़ का भी लोगों पर सिक्का था।

एक बार उनके इजलास में पुलिस के एक दीवान जी चोरी

साहब शुरू हुआ था। दीवान जी की उम्र [illegible] के लगभग होगी, कद छोटा एक, दोहरा भारी शरीर, और सफेद मूँछें, [illegible] गोल टोपी लगाए हुए [illegible] ठसक रहा था। साथ में मुलजिम जो लगभग 10-12 साल का लड़का था—इकहरा बदन, सूरत से [illegible] रही थी. उसके हाथ में एक लोटा था। नवाब साहब ने दीवान जी की ओर मुखातिब होकर पूछा—"कहिए दीवान जी! क्या मामला है?"

"हुजूर! मुलजिम को मय माल के पकड़ लाया हूँ।" दीवान ने गर्व से कहा।

"क्या किया था इसने?" नवाब साहब ने गौर से मुलजिम की तरफ देखा।

"हुजूर, यह लोटा उठाकर भागा था।"

"अच्छा!! कहाँ से?"

"मुलजिम चोरी से सरकार!"

"अच्छा तो फिर इसे किसने पकड़ा?"

"गुलाम ने सरकार!"

नवाब साहब यह सुनकर कुछ देर तक सोच-विचार करते रहे। फिर दीवान जी से पूछा, "यह किस वक्त का वाक़या है। पूरा हाल बताओ।"

"सरकार! कोई रात के नौ बजे का वक्त था। लोटा मेरी चारपाई के पास ही स्टूल पर रखा था। मैं दूसरी तरफ मुंह किए लेटा हुआ था। खटका होने पर जब मैंने मुंह फेरकर देखा, यह लोटा लेकर भाग चुका था। तब मैं इसके पीछे भागा और पकड़ लिया।"

"तुमने इसे कितनी दूर जाकर पकड़ा?"

"यही सरकार!, कोई ढाई-तीन सौ गज पर।"

"अच्छा, क्या तुम इसे अब भी भाग

इस सवाल पर दीवान जी चकराए और कुछ खामोश-से हो गए। नवाब साहब ने फिर कहा—"कहिए दीवान जी, चुप क्यों हो गए?"

फिर तो दीवान जी को अपनी बात साधने के लिए कहना पड़ा—"हाँ सरकार! गुलाम इसे अब भी पकड़ सकता है।"

नवाब साहब ने मुलजिम से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"छिद्दासिंह है हजूर! मैं तो बेकसूर हूँ मालिक!"

"अच्छा तो जो सच्ची बात हो वह बताओ, डरो मत।"

"हजूर! न तो मैं चौकी की तरफ गया, न मैंने लोटा उठाया। मैं तो रात अपने घर पर था। अभी सुबह ही दो सिपाहियों ने मुझे रास्ते में पकड़ लिया।" नवाब साहब ने कहा, "अच्छा तो दीवान जी सुनो। अगर तुमने अब छिद्दासिंह को भागकर पकड़ लिया तो मैं इसे सख्त से सख्त सजा दूँगा, और जो तुम न पकड़ सके तो याद रक्खो तुम्हें बरखास्त कराए बिना न छोड़ूँगा।" इसके बाद नवाब साहब दोनों को कोठी के बाहर ले गए। एक खाट पर दीवान जी को लिटाया गया, स्टूल पर लोटा रखा गया और छिद्दासिंह को उसके पास खड़ा किया गया। नवाब छिद्दा से बोले, "देखो! अगर तुम दीवान जी की पकड़ में न आए तो मय लोटे के अपने घर भाग जाना, फिर मेरे इजलास में आने की जरूरत नहीं।"

नवाब साहब ने दोनों को सावधान करके एक, दो, तीन कहा और छिद्दा लोटा लेकर भागा। दीवान जी खाट से उठकर उसके पीछे दौड़े। मगर कहाँ! क्षण-क्षण दोनों का अन्तर बढ़ता गया। छिद्दासिंह कहाँ-का-कहाँ पहुँचा और दीवानजी कोई सौ गज दौड़े कि बेदम होकर गिर पड़े। दो आदमी उन्हें वहाँ से उठाकर लाये। नवाब साहब की आँखें गुस्से से लाल हो गईं। दीवान जी से बोले—"तुम अव्वल दर्जे के झूठे हो। गरीबों को सताना ही

था एक मुकद्दमा लाए। दीवान जी की उम्र लगभग पचास के रही होगी, साँवला रंग, दोहरा भारी शरीर, नोकदार मूँछें, सूरत से सोलहों आने पुलिसपन टपकता था। साथ में मुलजिम जो लगभग ३०-३२ साल का जवान था–इकहरा बदन, सूरत से ग़रीबी टपक रही थी, उसके हाथ में एक लोटा था। नवाब साहब ने दीवान जी की ओर मुख़ातिब होकर पूछा—"कहिए दीवान जी! क्या मामला है?"

"हुज़ूर! मुलजिम को मय माल के पकड़ लाया हूँ।" दीवान ने गर्व से कहा।

"क्या किया था इसने?" नवाब साहब ने बग़ौर मुलजिम की तरफ देखा।

"हुज़ूर, यह लोटा उठाकर भागा था।"

"अच्छाऽऽ!! कहाँ से?"

"पुलिस चौकी से सरकार!"

"अच्छा तो फिर इसे किसने पकड़ा?"

"गुलाम ने सरकार!"

नवाब साहब यह सुनकर कुछ देर तक सोच-विचार करते रहे। फिर दीवान जी से पूछा, "यह किस वक़्त का वाक़या है। पूरा हाल बताओ।"

"सरकार! कोई रात के नौ बजे का वक़्त था। लोटा मैं चारपाई के पास ही स्टूल पर रखा था। मैं दूसरी तरफ मुँह कि लेटा हुआ था। खटका होने पर जब मैंने मुँह फेरकर देखा लोटा लेकर भाग चुका था। तब मैं लिया।"

"तुमने इसे कितनी दूर जाकर

"यहीं सरकार!, कोई दा

"अच्छा, क्या तुम इ

तुम्हारा काम रह गया है। मैं तुम्हें बरखास्त कराए बिना न छोड़ूँगा।" अब तो दीवान जी ने पैर पकड़ लिये; गिड़गिड़ाकर कहा, "हजूर माई-बाप हैं! मैं बाल-बच्चेदार आदमी हूँ, तबाह हो जाऊँगा सरकार! इस बार माफ कर दीजिए।" नवाब साहब को रहम आ गया। बोले, "जाओ इस बार तुम्हें छोड़ता जरूर हूँ लेकिन दीवानी से तुम्हें कान्सटेबिली पर जरूर तनज्जुल होना पड़ेगा। हालाँकि सजा बहुत कम है लेकिन सबक़ लो, आगे से किसी ग़रीब को कभी न सताना।"

ऐसा होता था नवाब साहब का इन्साफ! दूध-का-दूध और पानी-का-पानी।

लोग अपनी हर गरज के लिए नवाब साहब का दरवाजा खट-खटाते और नवाब साहब यथाशक्ति हरेक की गरज पूरी करते थे। उस पूरे इलाके मे हर आला-अदना के यहाँ शादियो में नवाब साहब के यहाँ से ही सारा सामान आता था। जब कोई सामान लेने की गरज से नवाब साहब के पास पहुँचता तो वह उससे प्रेम-पूर्वक पूछते—"कहो भाई जान! कैसे आये?"

आगन्तुक कहता—"आपकी लड़की की शादी है, अमुक तारीख की।"

"अच्छा!" नवाब साहब मुस्कराकर कहते, "तो मेरे लिए काम बताओ।"

"आपको आना होगा।"

"लेकिन भाई, तुम जानते ही हो, खाना तो मैं किसी के यहाँ खाता नही, रसद भेज देना।"

"लेकिन, आपकी मौजूदगी तो जरूरी है।"

"अच्छा, तो मैं जरूर हाज़िर हो जाऊँगा।"

"और सामान भी चाहिएगा।"

"जरूर, जरूर, वह तो चाहिए ही।"

फिर नवाब साहब मुन्शी को पुकारकर कहते, "मुन्शी जी ! जरा देखना, उस तारीख में किसी और के यहाँ तो सामान नहीं जाना है ?"

मुन्शी जी रजिस्टर देखकर बताते, "नहीं हुजूर !"

"तो फिर इनका सामान लिख लो।"

आगन्तुक मुन्शी जी को तकियों, क़ालीनों, दरियों, चाँदनियों और बर्तनों की फ़ेहरिस्त लिखवा देता और फिर कहता—"घोड़ी का ज़ेवर भी तो चाहिए।" नवाब साहब के पास घोड़ी का ठोस सोने-चाँदी का ज़ेवर था जिसका वज़न लगभग १०-१२ सेर था।

"अच्छा," नवाब साहब कहते—"तो ज़ेवर तुम अपनी तहवील में ही ले जाओ। सामान के लिए एक दिन पहले ताँगा भेज देना और अगर तुम्हारे पास ताँगे का सुभीता न हो तो मैं अपने ताँगे में भिजवा दूँगा।"

"नहीं-नहीं," आगन्तुक कहता, "ताँगा मैं ही भेज दूँगा।"

"अच्छा देखो, ज़ेवर के साथ इत्र-दान भी लेते जाना लेकिन उसमें इत्र तुम मत डालना; मैंने उसमें लखनऊ के असग़र अली के यहाँ की एक शीशी रख दी है। बा-खुदा बहुत उम्दा इत्र है, जिसके भी लग जाएगा एक महीने तक महकता रहेगा।" नवाब साहब का इत्रदान भी ठोस सोने-चाँदी का गंगा-जमनी बना हुआ था।

तो जुड़वाइए।"

"क्या सरकार फरीदपुर के लिए ?"

"हाँ, ज़रा दीनदयाल से मिल आऊँ।"

"इस काम के लिए हुज़ूर क्यों तकलीफ उठाते हैं, मैं ही चला जाऊँगा।"

"भई मुन्शी जी, यह काम तुम्हारे करने का नहीं; यह तो मुझे ही करना होगा। आप ताँगा जुड़वाइए।"

और जब नवाब दीनदयाल के यहाँ पहुँचे तो लाला दीनदयाल सकपका गए। नवाब ने सरल स्वभाव से कहा—

"भाई जान ! वह घोड़ी का ज़ेवर मँगवा दो, कई लोग माँगने आ चुके हैं।"

लाला जी का मुँह उतर गया; तालू सूख गया। फिर उन्होंने हिम्मत करके नवाब साहब से कह डाला—"नवाब साहब ! एक कसूर मुझसे हो गया है और उसके लिए मैं आपके सामने शर्मिन्दा हूँ।"

"क्यों-क्यो' 'क्या बात हुई ? क्या ज़ेवर चोरी हो गया ?"

"नहीं, मैंने उसे चार हज़ार में गिरवी रख दिया। नवाब साहब ! आजकल मेरे दिन कुछ खराब हैं। रुपये की तंगी की वजह से मैंने ऐसा किया।"

"फिर अब आगे क्या करोगे ?" नवाब ने शान्त स्वर में पूछा।

"आप खातिर जमा रखें, ज़ेवर आपके पास तीन-चार दिन बाद ज़रूर पहुँच जाएगा।"

"तो कहीं से रुपये का इन्तज़ाम हो गया है ?"

"हुआ तो नहीं है लेकिन लड़के की बहू के ज़ेवर रखकर मैं यह इन्तज़ाम कर दूँगा।"

यह सुनकर तो नवाब साहब बिगड़ उठे—"म्याँ, थुक है तुम्हारे खयाल पर ! तुम उस मासू

उसके अरमानों का गला ही घोंट देना चाहते हो ? क्या समझेगी

रुपये और जेवर छुड़ा लाना।" फिर नवाब साहब जरा गला साफ करके बोले, "देखो, यह रुपया मैं वापस नहीं लूँगा, यह मेरी तरफ़ से बहू की मुँह दिखाई है।"

लाला दीनदयाल की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे और नवाब साहब उन्हें रुपये सौंपकर वापस हो लिये। नवाब के साथ उनके मुन्शी भी गए थे। वापस होते समय बातचीत के सिलसिले में मुन्शी जी बोले—"सरकार का रुतबा तो बाँके बनवारी हापुड़ वालों से बहुत बड़ा है लेकिन उनका बैंक-बैलेंस एक लाख से ऊपर है और हज़ूर ने अपना सारा रुपया यूँ ही बाँट रखा है।"

"यह बैंक-बैलेंस क्या बला है मुन्शी जी ?"

"हज़ूर, बैंक में जमाशुदा रकम।"

"तो बाँके बनवारी का इतना रुपया बैंक में जमा है ?"

"जी हाँ सरकार !"

"लेकिन इससे क्या फ़ायदा ?"

"बैंक उन्हें रुपये का बहुत अच्छा सूद देता है हज़ूर !"

"भई मुन्शी जी, बैंक सूद ही तो देता है 'दुआ' तो नहीं देता ! सूद से दुआ बहुत बड़ी चीज़ है। मुन्शी जी, काश तुम इस बात को समझ सकते !"

चार दिन बाद लाला दीनदयाल घोड़ी का जेवर और दो हज़ार रुपये लेकर नवाब साहब के पास आये। उन्होंने किसी प्रकार ये दो हज़ार रुपये जुटाये थे। काफ़ी जद्दोजहद हुई लेकिन नवाब साहब ने किसी तरह भी रुपए मंजूर न किए, बोले "भाई जान ! यह तो तुम दुल्हन की हकतल्फ़ी कर रहे हो; यह रुपये तुम मेरी

तो जुड़वाइए।"

"क्या सरकार फ़रीदपुर के लिए?"

"हाँ, ज़रा दीनदयाल से मिल आऊँ।"

"इस काम के लिए हुजूर क्यों तकलीफ उठाते हैं, मैं ही चला जाऊँगा।"

"भई मुन्शी जी, यह काम तुम्हारे करने का नहीं; यह तो मुझे ही करना होगा। आप ताँगा जुड़वाइए।"

और जब नवाब दीनदयाल के यहाँ पहुँचे तो लाला दीनदयाल सकपका गए। नवाब ने सरल स्वभाव से कहा—

"भाई जान! वह घोड़ी का ज़ेवर मँगवा दो, कई लोग माँगने आ चुके हैं।"

लाला जी का मुँह उतर गया, तालू सूख गया। फिर उन्होंने हिम्मत करके नवाब साहब से कह डाला—"नवाब साहब! एक कसूर मुझसे हो गया है और उसके लिए मैं आपके सामने शर्मिन्दा हूँ।"

"क्यों-क्यों? क्या बात हुई? क्या ज़ेवर चोरी हो गया?"

"नहीं, मैंने उसे चार हज़ार मे गिरवी रख दिया। नवाब साहब! आजकल मेरे दिन कुछ खराब हैं। रुपये की तंगी की वजह से मैंने ऐसा किया।"

"फिर अब आगे क्या करोगे?" नवाब ने शान्त स्वर मे पूछा।

"आप खातिर जमा रखें, ज़ेवर आपके पास तीन-चार दिन बाद ज़रूर पहुँच जाएगा।"

"तो कहीं से रुपये का इन्तज़ाम हो गया है?"

"हुआ तो नहीं है लेकिन लड़के की बहू के ज़ेवर रखकर मैं यह इन्तज़ाम कर दूँगा।"

यह सुनकर तो नवाब साहब बिगड़ उठे—"ल
तुम्हारे खयाल पर! तुम उस मासूम दुल्हन के ज़ेव

उसके अरमानों का गला ही घोंट देना चाहते हो ? क्या समझेगी वह तुम्हारे बारे में ? बेचारी का दिल ही टूट जाएगा। बाज आओ अपने इरादे से। अगर ऐसी ही मजबूरी थी तो तुम्हें पहले ही मुझ से कहना था। लेकिन तुमने मुझे गैर समझा। सो यह चार हज़ार रुपये और ज़ेवर छुड़ा लाना।" फिर नवाब साहब ज़रा गला साफ़ करके बोले, "देखो, यह रुपया मैं वापस नहीं लूंगा, यह मेरी तरफ़ से बहू की मुंह दिखाई है।"

लाला दीनदयाल की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे और नवाब साहब उन्हें रुपये सौंपकर वापस हो लिये। नवाब के साथ उनके मुन्शी भी गए थे। वापस होते समय बातचीत के सिलसिले में मुन्शी जी बोले—"सरकार का रुतबा तो बांके बनवारी हापुड़ वालों से बहुत बड़ा है लेकिन उनका बैंक-बैलेंस [illegible]

लगते है, क्योंकि वे छोटी-छोटी बातों को बड़ी गम्भीरतापूर्वक लेते हैं।

'क' महोदय जब घर मे घुसते हैं तो घर की सफाई और सुव्यवस्था का बडी बारीकी से निरीक्षण करते हैं। यदि कोई फटा कपडा खूँटी पर दिखाई दे गया या किताबें बजाय अलमारी के मेज पर पडी मिली अथवा ड्राइंग-रूम में कोई कुर्सी ही टेढी दिखाई दे गई या फ़र्श पर फटा हुआ कागज़ पड़ा मिल गया तो उनका पारा चढ जाता है। मारे घर पर फटकार पडती है। बच्चे, नौकर और पत्नी की आफत आ जाती है। 'क' महोदय स्वयं शाम तक परेशान रहते हैं। घर की सुव्यवस्था अच्छी बात जरूर है, लेकिन सुव्यवस्था का विचार भी जब हद से गुजर जाता है तो वह एक सनक से ज्यादा कुछ नही होता। बहुत-से व्यक्तियो मे अलग-अलग तरह की सनक पाई जाती है।

कई लोग 'एटीकेट' और फैशन के इतने पाबन्द होते हैं कि जीवन में उनका अपना कुछ रह ही नही जाता। फैशन वास्तव में व्यक्ति दूसरों को दिखाने के लिए करता है। किसी फैशनपरस्त आदमी के पास अगर ठीक फैशन के कपड़े नही हैं, वह बाहर आना-जाना पसन्द नही करेगा। क्योंकि उसे भय रहता है कि लोग क्या कहेंगे (!) वह अपनी मर्जी दूसरो के हाथ बेच देता है। फैशन के हाईकोर्ट फ्रांस के एक विचारक ने कहा है कि "फैशनपरस्ती दिमागी गुलामी से ज्यादा कुछ नहीं है।" लेखक के एक मित्र श्री एस० एल० पण्डित जो कि उच्चकोटि के पत्रकार हैं—विदेशियों के भोजों में तथा राजदूतों से भेंट करने के लिए भी अपनी देसी पोशाक कुर्ते-पाजामे या कुर्ता-धोती मे जाते हैं। उन्होंने कभी उन लोगो के मध्य अपनी स्थिति को हास्यास्पद नही अनुभव किया। श्री पण्डित का कथन है कि "जिन लोगों के मन में अपने प्रति हीन भावना रहती है, जो अपने अन्दर कोई-न-कोई कमी महसूस करते

जानता कि उनकी यह मृत्यु भारत एक बहुत बड़ा धक्का रह जाती। संसार में यही होता आया है और आगे भी यही होता रहेगा। हम किसी भी प्रकार इस नियम का पालन नहीं कर सकते। मैं इस यथार्थ को मन से ही हृदय से उतार लिया। दुःख बातों का बोझ हल्का करने के लिए यह जरूरी है कि उन्हें बातों-ही-बातों विस्मृत कर दिया जाए। मैंने यही करना आरम्भ कर दिया है।"

समाज के लोगों ने भले ही उनकी इस व्यवहार पर टीका-टिप्पणी की, किन्तु उनके जीवन के दृष्टिकोण को कोई भी कदापि नहीं देख पाए। दुःख को हल्का करने के लिए उनका यह यथार्थवादी दृष्टिकोण उचित और सामयिक था।

बुद्ध-कथाओं में 'कैशा गौतमी' नाम की एक स्त्री की कथा आती है। उसका एकमात्र पुत्र मर गया और वह शोक से इतनी पागल हो गई कि लोगों से पुत्र को जिन्दा करने की औषधियाँ पूछती फिरती। किसी समझदार व्यक्ति ने उसे गौतम बुद्ध के पास भेज दिया। बुद्ध ने सारी स्थिति समझी और महिला को आश्वासन दिया कि उसका पुत्र जिन्दा हो सकता है, बशर्ते कि एक मुट्ठी सरसों के दाने किसी ऐसे गृहस्थ से माँग लाए जिसके यहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। और वह भोली महिला दाने माँगने चल दी। किन्तु शाम तक ही उसे अपने अज्ञान का पता चल गया, क्योंकि सारे नगर में उसे कोई परिवार ऐसा न मिला जिसके यहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो और तब वह समझ गई कि संसार में मैं ही अकेली ऐसी नहीं हूँ जिसे प्रियजन की मृत्यु का दुःख झेलना पड़ रहा है, वरन् प्रत्येक व्यक्ति को इस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। मृत्यु प्रकृति का शाश्वत नियम है।

और मृत्यु तो फिर भी बड़ी बात है; बहुत बार छोटी-छोटी घटनाएँ और नाम-मात्र की परेशानियों से लोग विचलित होने

व्यापारी के पास एक तार आया। उसने तार को खोलकर पढा और गद्दी के नीचे सरका दिया, और फिर ग्राहक से बातचीत करने लगा। लगभग आधा घण्टे बाद फिर तार आया; व्यापारी ने पढा और उसे भी गद्दी के नीचे रख लिया। उस ग्राहक को देखकर बहुत कौतूहल हुआ, क्योंकि तार जैसी चीज सामान्य जीवन मे बडी खलबली पैदा करने वाली होती है। अत. उसने व्यापारी से पूछा—"सेठ जी, ये कैसे तार थे जिन्हें आपने गद्दी के नीचे सरका दिया?"

व्यापारी ने हँसकर कहा—"पहले तार मे एक जहाज के डूब जाने की खबर है जिसमे मेरा एक लाख रुपये का माल था। दूसरे तार में यह समाचार है कि एक दूसरा जहाज बन्दरगाह पर पहुँच गया है, उसमे भी हमारा एक लाख का माल है मगर उस माल के भाव बहुत बढ गए हैं। उसमें दो लाख का मुनाफा हुआ है।"

उस व्यापारी ने न तो एक लाख के घाटे की बात को गम्भीरता से लिया और न दो लाख के मुनाफे से हर्षोत्फुल्ल हुआ। घाटा और मुनाफा उसके जीवन की सामान्य बातें थी।

जीवन में आर्थिक ही नहीं वरन् कई तरह के घाटे और फायदे होते हैं। उन सभी को यदि जीवन की सामान्य घटनाओं की तरह स्वीकार किया जाए तो दिमागी परेशानियों और उलझनों से बचा जा सकता है। सच तो यह है कि जीवन एक पहाड़ी नदी के समान है जिसके मार्ग मे चट्टानें, रोड़े, पत्थर, बड़े-बड़े वृक्ष आदि अनेक बाधाएँ आती हैं। लेकिन उसका प्राञ्जल प्रवाह किसी बाधा से रुकता नहीं; कुण्ठित नहीं होता। वह मस्ती के साथ आगे ही बढ़ता चला जाता है। जीवन का प्रवाह भी इसी तरह होना चाहिए।

कई बार आदर्शों का अनावश्यक बोझ भी जिन्दगी में एक तल्खी और रूखापन ला देता है। एक पादरी महोदय रेलवे स्टेशन

हैं, वे ही ज्यादा फ़ैशनप्रिय होते हैं, बाहरी टीम-टाम से अपनी
को ढकने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे व्यक्तियों में आत्म-विश्वा
भी कमी पाई जाती है।"

आजकल तंग कपड़ों का फ़ैशन है। तंग कपड़े पहनकर यु
युवतियों को उठने-बैठने और झुकने तक में परेशानी हो
लेकिन वे परेशानी उठाकर भी फ़ैशन के पाबन्द रहना चाहते

हॉलीवुड के एक प्रसिद्ध अभिनेता के बारे में यह मश
कि वह इतवार की छुट्टी के दिन कहीं आता-जाता नहीं;
कपड़े पहने कभी अपनी बगीची के लॉन में लोटता है; कभी
के हौज में पड़ा रहता है। न वह उस दिन हजामत बनाता
सूट पहनता है। उसका कथन है कि "एक सप्ताह लगातार ब
दिखावे की पाबन्दी से, आधुनिक फ़ैशन के कपड़ों से, तकल्लु
बातचीत से मैं अपने शरीर और मन को बोझिल पाता हूँ। इ
लिए इतवार के दिन मैं सारी पाबन्दियों को उतार फेंकता हूँ
स्वच्छन्दतापूर्वक लोटता हूँ, टहलता हूँ, सारा दिन घरेलू क
में रहता हूँ। सोचता हूँ, काश ! मैं प्रतिदिन ही इस तरह
स्वच्छन्दता का उपभोग कर पाता।"

फ़ैशन की आलोचना से यहाँ हमारा मतलब रूढ़िवादी त
तरीके से फ़ैशन को कोसना नहीं है। बल्कि तात्पर्य सिर्फ इतन
कि इसकी पाबन्दी से जीवन में अनावश्यक तनाव या भार न
आने देना चाहिए। इस सम्बन्ध में बहुत सचेत और सतर्क रह
अनावश्यक गम्भीरता से ज्यादा कुछ नहीं है।

अनावश्यक गम्भीरता के और भी अनेक उदाहरण मिल सक
हैं। छोटी-छोटी बातों को लेकर उलझन और परेशानी में नह
पड़ना चाहिए।

एक बार किसी बड़े व्यापारी के पास एक सामान्य स्थिति क
ग्राहक बैठा था; कुछ व्यापार-सम्बन्धी बातचीत

ापारी के पास एक तार आया। उसने तार को खोलकर पढा ौर गद्दी के नीचे सरका दिया, और फिर ग्राहक से बातचीत रने लगा। लगभग आधा घण्टे बाद फिर तार आया; व्यापारी पढ़ा और उसे भी गद्दी के नीचे रख लिया। उस ग्राहक को खकर बहुत कौतूहल हुआ, क्योंकि तार जैसी चीज सामान्य ीवन में बडी खलबली पैदा करने वाली होती है। अत उसने यापारी से पूछा—"सेठ जी, ये कैसे तार थे जिन्हें आपने गद्दी के ीचे सरका दिया ?"

व्यापारी ने हँसकर कहा—"पहले तार में एक जहाज़ के डूब ाने की ख़बर है जिसमें मेरा एक लाख रुपये का माल था। दूसरे ार में यह समाचार है कि एक दूसरा जहाज़ बन्दरगाह पर पहुँच गया है, उसमें भी हमारा एक लाख का माल है मगर उस माल के भाव बहुत चढ़ गए हैं। उसमें दो लाख का मुनाफ़ा हुआ है।"

उस व्यापारी ने न तो एक लाख के घाटे की बात को गम्भीरता से लिया और न दो लाख के मुनाफे से हर्षोत्फुल्ल हुआ। घाटा और मुनाफ़ा उसके जीवन की सामान्य बातें थी।

जीवन में आर्थिक ही नहीं वरन् कई तरह के घाटे और फ़ायदे होते हैं। उन सभी को यदि जीवन की सामान्य घटनाओं की तरह स्वीकार किया जाए तो दिमाग़ी परेशानियों और उलझनों से बचा जा सकता है। सच तो यह है कि जीवन एक पहाड़ी नदी के समान है जिसके मार्ग में चट्टानें, रोड़े, पत्थर, बड़े-बड़े वृक्ष आदि अनेक बाधाएँ आती हैं। लेकिन उसका प्राञ्जल प्रवाह किसी बाधा से रुकता नहीं; कुण्ठित नहीं होता। वह मस्ती के साथ आगे ही बढ़ता चला जाता है। जीवन का प्रवाह भी इसी तरह होना चाहिए।

कई बार आदर्शों का अनावश्यक बोझ भी जिन्दगी में एक ा देता है। एक पादरी महोदय रेलवे स्टेशन

से गिरजाघर जाने के लिए टैक्सी पर बैठे। संयोगवश टैक्सी ड्राइवर उनका परिचित निकला; वह ड्राइवर नियमित रूप से गिरजे की प्रार्थना में पत्नी सहित आता था। दोनों बड़े मनोयोग से प्रार्थना करते थे। पादरी महोदय ने ड्राइवर से पूछा—"जोज़ेफ! कुशल से हो न? जिन्दगी कैसी चल रही है?"

ड्राइवर कहने लगा—"हाँ पिता (फ़ादर) सब ठीक है। हम लोग बड़े नियम और संयम से रहते हैं। रोज ही प्रभु प्रार्थना करते हैं फिर बाइबिल पढ़ते हैं। किसी को सताते नहीं, झूठ नहीं बोलते, ईमानदारी से पैसे कमाते हैं। हम पति-पत्नी कभी नहीं लड़ते। विषय-भोग भी हमने [illegible] दिया है। [illegible]

हम दोनों कभी-कभी लड़ते भी हैं, फिर एक हो जाते हैं तो बड़ा अच्छा लगता है। मैं कभी-कभी हल्की शराब भी पी लेता हूँ। फिर हम पति-पत्नी एक ही बिस्तर पर सोते हैं। 'मेरी' (पत्नी) अब मुझे ज्यादा अच्छी लगती है। मैं आजकल कुछ ज्यादा पैसे कमाने की कोशिश में हूँ ताकि एक रेडियो खरीद सकूँ। रेडियो में आने वाले प्यार के गाने मेरी पत्नी को बहुत अच्छे लगते हैं।"

"ठीक है," पादरी महोदय बोले, "अब तुम जीना सीख गए हो।"

शराब पीने की बात लिखने से यहाँ हमारा तात्पर्य शराब की वकालत करने का नहीं है। अपितु संकेत सिर्फ इस बात की तरफ है कि जरूरत से ज्यादा पाबन्दियाँ जीवन में अनावश्यक गम्भीरता ले आती हैं।

एक सज्जन इस बात से चिन्तित रहते थे कि उनका लड़का बाजार से मोल-तोल करके किफायत का सौदा नहीं खरीदता था। सब्जी, कपड़ा, साबुन, जूते आदि वह जो कुछ खरीदता था, दुकानदार को मुँहमाँगा मोल देकर ले आता था। पुत्र कहता था कि जब दुकानदार ठीक कीमत बताता है तो मोल-भाव करना व्यर्थ है। दूसरे मोल-भाव से खरीददार का व्यक्तित्व हल्का हो जाता है। पिता महोदय कहते थे कि दुकानदार कभी ठीक मोल नहीं बताता, वह हमेशा ग्राहक से ज्यादा कीमत वसूल करने का इरादा रखता है। बिना मोल-तोल चुकाए ग्राहक हमेशा लुटता है। उनके लिए यह बात बड़ी परेशानी पैदा करने वाली बनी रहती थी और वे काफ़ी गम्भीरता से इस पर सोच-विचार करते रहते थे। उन्हें यह दृढ़ निश्चय हो गया था कि उनका पुत्र सारी जिन्दगी समझदारी से सौदा नहीं खरीद सकेगा, और हमेशा यूँ ही लुटता रहेगा। यह छोटी-सी बात हमेशा उनके मन को सालती रहती थी।

इस सिलसिले में एक दूसरा उदाहरण सुनिये—एक छोटी-

गाँव-गाँव में बाहर से कोई तस्वीर बेचने वाला आया। उसके पास बड़े सुन्दर-सुन्दर चित्र थे। वह घर-घर और दुकान-दुकान घूम-घूमकर चित्र बेच रहा था। एक डाक्टर महोदय ने एक स्वस्थ और सुन्दर बच्चे का चित्र उससे आठ आने में खरीद लिया। अपने कुछ मित्रों को उन्होंने वह चित्र दिखाया। चित्र सुन्दर था, सभी ने तारीफ की। एक मित्र ने पूछा, "आपने यह चित्र कितने में खरीदा?"

"आठ आने में।" डाक्टर साहब ने बताया।

मित्र बोले, "डाक्टर साहब! वह तो आपको ठग ले गया। यही चित्र बाजार में उसने छै-छै आने में बेचे हैं।"

डाक्टर साहब मुस्कराकर बोले—"आपने इस चित्र की उपयोगिता को पैसों से नापा! लेकिन मैंने यह किसलिए खरीदा जरा उस पर भी गौर कीजिए। हमारे लड़के की बहू पहली बार गर्भवती हुई है। मैं यह चित्र उसके कमरे में लगवाऊँगा। प्रतिदिन चित्र देखने से उसके मन पर इस स्वस्थ और सुन्दर बालक की छाप पड़ेगी तो वह गर्भस्थ बालक को प्रभावित करेगी और उसका बच्चा चित्र के अनुरूप ही स्वस्थ और सुन्दर बन सकता है। यदि आठ आने में इस उद्देश्य की पूर्ति होती है तो क्या यह मूल्य अधिक है?" इस पर वह मित्र महोदय चुप हो गए क्योंकि डाक्टर साहब का दृष्टिकोण बड़ा यथार्थवादी था।

वास्तव में जीवन की नाप-तौल जो लोग पैसे से करने लगे हैं वे जीवन का सही मूल्यांकन करने में असमर्थ रहते हैं। एक-एक पैसे का हिसाब रखने वालों की जिन्दगी इतनी व्यापारी हो जाती है कि पैसा उस पर छा जाता है और वे मात्र अर्थलाभ को जिन्दगी की सफलता और पैसे की हानि को जीवन की हानि समझने लगते हैं।

एक और दृष्टि की ओर विचार कीजिए। जीवन में मनुष्य

कई बार अप्रत्याशित परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है; और उनसे निपटने के लिए उसे अप्रत्याशित काम भी करने पड़ते हैं। ये अप्रत्याशित काम कई लोगों को बड़े भारी लगने लगते हैं। एक साहब को अपने पुत्र की ऊँची पढ़ाई के लिए काफी रुपये की ज़रूरत पड़ी, उनके पास नक़द रुपया नहीं था। संयोग कि कहीं दूसरी जगह से भी रुपये का प्रबन्ध न हो सका। हारकर उन्हें अपनी पत्नी का सोने का ज़ेवर बन्धक (गिरवी) रखकर रुपया लेना पड़ा। ज़ेवर गिरवी रखने की बात ने उनके मन पर बड़ा असर किया। एक तरह की हीन भावना उनके मन में पैदा हो गई और वह इस तरह सोचने लगे—'जीवन मे हमने कभी नहीं सोचा था कि ज़ेवर गिरवी रखने की नौबत भी आ सकती है। आज हम इस दशा को पहुँच गए कि हमें घर का ज़ेवर रेहन रखना पड़ा।' इतना ही नहीं वरन् वे एक हद तक अपने को अपराधी समझने लगे। इस घटना को उन्होंने इतनी गम्भीरता से लिया कि कई महीने तक उदास बने रहे; मन की खुशी और जीवन का आकर्षण ही खो बैठे।

वास्तव में ऐसी परिस्थितियाँ जीवन की गम्भीर समस्या नहीं बननी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे इस तरह की परिस्थितियाँ आती हैं, अप्रत्याशित घटनाएँ होती हैं। यह जीवन-प्रवाह का नियम है। सच तो यह है कि ये बातें समस्या तब बनती हैं जब हम उनके लिए तैयार नहीं रहते। वैसे किसी अप्रत्याशित बात के लिए व्यक्ति तैयार भी नहीं रह सकता। किन्तु कोई भी घटना घटने अथवा विषम परिस्थिति आने पर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि हम ही अपवाद रूप से इसके शिकार हुए हैं, वरन् यथार्थ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, अर्थात् इस तरह की छोटी-बड़ी बातें जीवन में आना स्वाभाविक है—ऐसा समझकर चलना चाहिए। तब समस्याओं की गम्भीरता और परिस्थितियों का बोझ

सभव ही इनका हो सकता है। जीवन के सुखदायक है ऐसे गुण जो करने अनुभव।

आत्मविश्वास

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए आत्मविश्वास बहुत महत्त्वपूर्ण काम करता है। जिन लोगों के पास आत्मविश्वास की पूँजी होती है, वे बड़ी से बड़ी बाधाओं को आसानी से पार कर जाते हैं। जैसा लोगों का कहना है कि "आत्मविश्वास मनुष्य के मार्ग की रुकावटें स्वयं हटाकर उसे रास्ता दे देता है।"

जीवन में एक सज्जन ने अपने दृढ़ आत्मविश्वास से किस प्रकार अपना मनोवांछित प्राप्त किया, यह उल्लेखनीय है।

"विनोदसिंह का बचपन से ही थानेदार बनने का स्वप्न था और वह हर मूल्य पर अपने स्वप्न को साकार करने के लिए कटिबद्ध था। लेकिन विपरीत परिस्थितियों ने उनका मार्ग रोक दिया। उन दिनों थानेदारी की ट्रेनिंग में जाने के लिए हाईस्कूल की परीक्षा पास करना जरूरी था। लेकिन चार वर्ष तक लगातार विनोदसिंह हाईस्कूल परीक्षा में फेल होता रहा। कारण यह था कि यद्यपि उसके और सब विषय अच्छे थे, गणित उसे बिल्कुल नहीं आता था और यह चार वर्ष तक प्रयत्न करने पर भी गणित में पास न हो सका। थानेदार बनने की आशा धूमिल होने लगी। परन्तु उसके आत्मविश्वास में राई-भर भी कमी नहीं आई। घर वालों और मित्र-परिचितों ने उसके स्वप्न की शेखचिल्लियों से तुलना करनी शुरू कर दी। परिस्थितियों से बाध्य होकर विनोद ने कभी यूनिवर्सिटी में नौकरी की; फिर कुछ दिन एक कंपनी की दुकान पर सेल्समैन का काम किया। वर्ष और बीत गए। लेकिन इन दो वर्षों में एक

उसका ध्यान अपने लक्ष्य से नहीं हटा।

इस सिलसिले में यह और उल्लेखनीय है कि इस समय तक दिलीपसिंह ने थानेदारी की काफी योग्यता भी प्राप्त कर ली थी, क्योंकि उसके मन में थानेदार बनने की सच्ची लगन थी। कस्बे के थाने में जो भी नया थानेदार आता दिलीपसिंह उससे मिलता और दोस्ती कर लेता था। दोस्ती इस रूप में कि किसी को चाचा बना लेता, किसी को ताऊ और फिर उनके पास आना-जाना, उनकी सेवा करना, उनके काम-धन्धों में उनकी मदद करना उसके स्वभाव की विशेषता बन गई थी। फलत. हरेक दरोगा उसकी मदद करता, उसे उत्साहित करता। इस तरह थानेदारों के सम्पर्क में रहकर उसने यह सब सीख लिया था कि रोजनामचा किस तरह भरा जाता है; रवानगी किस तरह लिखी जाती है; रिपोर्ट किस तरह दर्ज होती है; यहाँ तक कि मुल्जिम को गालियाँ किस तरह दी जाती हैं और गवाह किस तरह तैयार किए जाते हैं; गुण्डों को किस तरह काबू करना चाहिए तथा शहर का इन्तज़ाम करने के क्या गुर हैं। दिलीपसिंह के पास सिर्फ थानेदारी की सनद ही नहीं थी अन्यथा पूरे अर्थों मे वह थानेदारी की योग्यता रखता था।

इधर-उधर की नौकरियाँ चूँकि दिलीपसिंह के लक्ष्य में सहायक नहीं थीं, इसलिए उसने नौकरियाँ छोड दीं। और एक बार फिर थानेदारी की ट्रेनिंग में भर्ती होने के प्रयत्नों में लग गया। घर वालों ने उसकी इस महत्त्वाकांक्षा को एक सनक समझ लिया था तथा दूसरे मित्र-परिजन भी उससे कोई उत्साहवर्धक बातचीत नहीं करते थे। लेकिन दिलीपसिंह दृढ आत्मविश्वास के ...पुनी लक्ष्य-प्राप्ति में लगा था। बाधा वही पुरानी थी—
...स नही था-। उसने जितने चाचा-ताऊ थानेदार
...से कई अच्छी पदोन्नति कर गए थे। उसने

कह सकते हैं कि साहस के साथ जब दृढ़ता मिल जाती है, वही आत्मविश्वास होता है। वास्तव में आत्मविश्वासी व्यक्ति किसी से डरता नहीं। बुरी-से-बुरी स्थिति का सामना करने के लिए उसके पास बल होता है।

आत्मविश्वास को एक दूसरे दृष्टिकोण से परखिए। अनेक लोगों का किसी देवी-देवता में अथवा ईश्वर में बड़ा भारी विश्वास होता है। अपने इष्ट के माध्यम से वे हर काम में सफलता की आशा करते हैं; अपने अन्दर मुसीबतों को झेलने एवं विषम परि-स्थितियों से जूझने की शक्ति अनुभव करते हैं क्योंकि उन्हें अपने इष्ट में बड़ा भारी विश्वास होता है। इस विश्वास का रहस्य और कुछ नहीं है, व्यक्ति देवी-देवता अथवा ईश्वर के माध्यम से अपने में ही विश्वास करता है; उसका आत्मविश्वास ही उसे सब-कुछ देता है।

मैंने शारीरिक स्वास्थ्य पर काफ़ी पुस्तकें लिखी हैं। उनमें कुछ पुस्तकें यौन विषयक (सैक्स सम्बन्धी) भी हैं। सभी पुस्तकें पाठकों में काफी लोकप्रिय हुई हैं। इन पुस्तकों को पढ़कर प्रति-दिन काफी पाठक मुझे पत्र भी लिखते हैं, वे मुझसे अपनी स्वास्थ्य और यौन समस्याओं का समाधान चाहते हैं। किन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि ६० प्रतिशत पाठकों के पत्र हीन भावना और निराशा से भरे होते हैं। उन सब में एक ही ढंग की बात होती है —"अब आपकी शरण में हूँ। आप मुझे बचा लीजिए। आप मुझे जीवनदान दीजिए। आपका यह अहसान ज़िन्दगी भर नहीं भूलूँगा। अगर मैं ठीक नहीं होता हूँ तो आत्महत्या के सिवाय मेरे पास कोई चारा नहीं है। मेरे जीवन की रक्षा आपके हाथ में है।"

इस तरह के पत्र लिखने वाले सभी व्यक्ति अपना आत्म-विश्वास खोए हुए हैं। जीवन के प्रति उन्हें निराशा होती है। वे अपने प्रति हीन भावना से पीड़ित होते हैं। यूँ किसी दूसरे से कोई

सहायता माँगना अथवा मार्गदर्शन चाहना कोई बुरी बात नहीं है। समाज में एक-दूसरे की सहायता से ही काम चलता है। लेकिन निराश होकर परिस्थितियों में डूबने लगना वास्तव में कायरता की बात होती है और जो लोग परिस्थितियों से प्रताड़ित होकर आत्महत्या जैसी चेष्टा के इरादे बनाने लगते हैं वे सचमुच ही परले दर्जे की कायरता का प्रदर्शन करते हैं।

कहना न होगा कि यह सब-कुछ व्यक्ति में आत्मविश्वास खो बैठने के कारण होता है। आत्मविश्वास के अभाव में व्यक्ति बहुत दुर्बलहृदय हो जाता है। *'महाभारत'* के प्रारम्भ में अर्जुन को रणक्षेत्र में वस्तुत मोह नहीं हुआ था। वह आत्मविश्वास खो बैठा था। कृष्ण ने गीता के उपदेश द्वारा उसका आत्मविश्वास ही जगाया था। एक स्थल पर कृष्ण ने कहा है :—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

निरीक्षण करना बहुत जरूरी है। आत्मनिरीक्षण द्वारा उसे अपनी गुप्त शक्तियों को जगाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अपनी खुद की क्षमता और योग्यता होती है। प्रायः लोग अपनी इन शक्तियों को नहीं पहचान पाते। सच तो यह है कि आत्मविश्वास कहीं बाहर से प्राप्त की जाने वाली वस्तु नहीं है। वह तो व्यक्ति के अन्दर ही होता है। आवश्यकता उसे सजग करने की है।

यदि आप अपने अन्दर आत्मविश्वास की कमी पाते हैं, तो कोई ऐसा काम अपने लिए चुनिए जो आपने न किया हो, चाहे वह काम चारपाई बुनना ही हो। और फिर उसमें दृढ़ निश्चय के साथ लग जाइए; काम को पूरा करके ही दम लीजिए। ऐसा करने से आप बहुत-कुछ अपने बारे में सीखेंगे-जानेंगे। काम पूरा हो जाने पर आपके अन्दर एक दृढ़ता आएगी और आप अपने पर भरोसा करने लगेंगे। कठिन लगने वाले कार्य करने का चाव भी मनुष्य में बहुत आत्मविश्वास पैदा करता है। कठिन कार्यों से जूझने पर व्यक्ति में दृढ़ता और आत्मविश्वास दोनों बढ़ते हैं।

यहाँ एक और तथ्य उल्लेखनीय है कि कोई भी मुसीबत अथवा विषम परिस्थिति आने या जीवन में कोई संकट उपस्थित हो जाने पर उसके हल के लिए प्रयत्नशील होते हैं। इधर-उधर दौड़-धूप करके [illegible]

[illegible] पर दूसरों से स

उसी के अन्दर तो होते हैं, लेकिन यह तथ्य उसकी दृष्टि से नज़र-अन्दाज़ हो जाता है।

रामायण में एक प्रसंग आता है कि जब नल, नील, जामवन्त और हनुमान आदि सीता जी का पता लगाने के सिलसिले में समुद्रतट पर पहुँचे तो प्रश्न आया कि समुद्र पार करके लंका किस प्रकार पहुँचा जाए? सबने हनुमान जी से सागर पार करने का अनुरोध किया। लेकिन हनुमान बोले, "भला मैं अकेला सागर कैसे पार कर सकता हूँ?" वस्तुतः उन्हें अपनी शक्ति का भान ही नहीं था। तब जामवन्त बोले—"हनुमान जी, आप अपनी शक्ति को ही नहीं पहचानते। आपने तो बालकपन में ही सूर्य को मुँह में रख लिया था।" जामवन्त ने उन्हें और दूसरे साहसिक कार्यों का भी स्मरण कराया। फिर तो हनुमान जी में आत्मविश्वास जाग उठा और वे एक छलांग में सागर पार करके लंका पहुँच गए।

उपर्युक्त प्रसंग भले ही पौराणिक है किन्तु इससे यह तथ्य अवश्य सामने आता है कि व्यक्ति को अपना आत्मविश्वास जगाना चाहिए। निराशा में डूब कर वह अपनी क्षमता ही भूल जाता है। ऐसे मौक़ों पर आत्मनिरीक्षण कीजिए। सोचिए जब आप विद्यार्थी थे तो हमेशा कक्षा में प्रथम आते रहे हैं। खेलकूद में आप सबसे अधिक इनाम पाते थे। अनेक अवसरों पर आपने साहस और सूझ-बूझ का परिचय देकर आत्मोन्नति की है। वह क्षमता अब भी आपके अन्दर है। उसे पहचानिए और जगाइए, फिर वह बाज़ी भी आपकी हो रहेगी।

कार्य दूसरों के दोष देखना ही है। हम बड़ी आसानी से किसी व्यक्ति के लिए यह कह देते हैं—वह तो घमण्डी है, मूर्ख है, अमुक आदमी झूठा और गप्पी है, तीसरा कोई व्यक्ति शराबी है, व्यभिचारी है। फलाना आदमी बेईमानी करता है, चरित्रहीन है।

लेकिन एक वेश्यागामी भी दूसरे क्षेत्रों में चरित्रवान् हो सकता है। एक शराब पीने वाला भी ईमानदार हो सकता है। एक जुआ खेलने वाला भी दयावान् और परोपकारी हो सकता है।

सच तो यह है कि सामाजिक आदर्श और मर्यादाएँ इतनी कठोर होती हैं कि उनके घेरे में चलना व्यक्ति के वश की बात नहीं होती। परिस्थितियाँ मनुष्य को मर्यादा-उल्लंघन के लिए विवश कर देती हैं। यदि कोई निस्सहाय और भूखा व्यक्ति जीवन-रक्षा के लिए रोटियाँ चुराकर खा लेता है, तो सामाजिक मर्यादा के अनुसार वह भले ही चोर करार दे दिया जाए किन्तु मानवता की आचार-संहिता के मुताबिक वह चोर नहीं है। खैर, यहाँ हमारा विषय सामाजिक आदर्शों की नुक्ताचीनी नहीं है। हम अपने उसी व्यावहारिक पक्ष पर आते हैं।

दूसरों के छिद्रान्वेषण से वस्तुतः हम अपनी ही हानि करते हैं। वह इस तरह कि जब हम किसी व्यक्ति के दोषों को देखने लगते हैं तो हम उसे बुरा और गिरा हुआ आदमी मान लेते हैं और फिर स्वाभाविक रूप से उससे घृणा करने लग जाते हैं। लेकिन किसी मनुष्य को दूसरे मनुष्य से घृणा नहीं करनी चाहिए। घृणा करना एक भारी दुर्गुण है, आदर्शवाद की दृष्टि से ही नहीं व्यावहारिक दृष्टि से भी जब हम दूसरों से घृणा करते हैं तो टोटे में रहते हैं; क्योंकि जिससे भी हम घृणा प्रकट करेंगे वह हमारा शत्रु हो जाएगा। और व्यक्ति को जीवन में मित्र बनाने हैं, शत्रु नहीं।

इसके अलावा दूसरों के दोष देखना जब किसी व्यक्ति की आदत बन जाती है तो वह उसके गुण नहीं देख पाता; जबकि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ गुण भी अवश्य होते हैं। दूसरी ओर उसकी यह प्रवृत्ति बन जाती है कि वह अपने को ऊँचा और बड़ा समझने लगता है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति में झूठे घमण्ड को जन्म देती है जो वास्तव में एक बड़ा दुर्गुण है। इस दुर्गुण से कोई भी व्यक्ति आत्मनिरीक्षण नहीं कर पाता।

मान लीजिए कि आपके मुहल्ले में कोई व्यक्ति वेश्यागामी है, लेकिन मुहल्ले में वह बड़े मेल-जोल से रहता है, किसी की बुराई-भलाई में नहीं है, वक्त-बे-वक्त सबके काम आता है; किसी की बहू-बेटी को भी बुरी निगाह से नहीं देखता, तो क्या उसे बुरा व्यक्ति मान लेना उचित है? सच तो यह है कि प्रायः समाज की प्रताड़ना व्यक्ति को कुपथगामी बना देती है। एक कहावत है कि 'आदमी का कुछ बुरा नहीं होता।' इन बातों को हमें थोड़ी गहराई से सोचना चाहिए। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि गहराई से देखने पर यही पायेंगे कि किसी व्यक्ति में यदि कोई तथाकथित दोष है तो परिस्थितियों-वश पैदा हुआ है, यदि किसी व्यक्ति की शादी नहीं हुई, अथवा जवानी में ही उसकी पत्नी मर गई और फिर लोगों ने उसकी शादी नहीं कराई, ऐसी हालत में यदि उसके किसी स्त्री से अवैध सम्बन्ध हो जाएँ अथवा वह वेश्यागामी हो जाए तो वह स्वयं इसके लिए कहाँ तक दोषी है? दरअसल ऐसे लोगों की उपेक्षा या तिरस्कार नहीं करना

सकते हैं। इस सिलसिले में एक उदाहरण सुनिए—

दो भाई थे। सुविधा के लिए नाम रख लीजिए—रमेश और सुरेश। रमेश सुरेश से दस साल बड़ा था। रमेश की शादी हो चुकी थी और वह अपने कार-रोजगार से लग गया था। सुरेश जब बड़ा हुआ तो रमेश ने उसे दूसरा काम शुरू करा दिया ताकि वह भी जीवन में जम जाए। दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम था। किन्तु सुरेश नातजुर्बेकार और लापरवाह तबीयत का था। उसे अपने काम में घाटा होने लगा। घाटे की बात बड़े भाई से कहने में उस की अयोग्यता जाहिर होती है। इसलिए सुरेश ने बड़े भाई के सामने स्थिति को स्पष्ट नहीं किया। फल यह हुआ कि घाटा धीरे-धीरे बढ़ता गया और एकाएक काम फेल हो गया। उसकी अयोग्यता और लापरवाही रमेश के सामने नंगे रूप में आ खड़ी हुई। कर्जदार अपना रुपया मांगने आ खड़े हुए। बड़े भाई को इससे बहुत आघात पहुँचा। ऐसी स्थिति में बहुत-से मित्र-परिजन भी अपनी राय देने और टीका-टिप्पणी करने आ जाते हैं। सभी ने रमेश से यही कहा कि सुरेश को अलग कर दो, जो कुछ किया है अपने आप भरे। तुम आखिर कहाँ तक मदद करोगे! कई टीका-टिप्पणी करने वालों ने यह भी कहा—"भई, टोटा होने का कोई काम नहीं था, मगर सुरेश ने तो रुपया उड़ाया है। हमने सुना है कि उसने शराब भी पी है। और भी रंगरेलियाँ की हैं। खूब सैर-सपाटे भी करता था।"

किन्तु रमेश का अपना दृष्टिकोण सबसे भिन्न था। उसे अपने छोटे भाई सुरेश से बेहद प्यार था। उसे यह बात बर्दाश्त न थी कि सुरेश को अपने से अलग कर दे, उसे दुनिया में ठोकरें खाने के लिए छोड़ दे और जो कुछ बेवकूफियाँ उसने की हैं उनकी सजा भुगतने के लिए उसे धकेल दे। वस्तुतः जिसमें सच्चा प्रेम होता है उसमें अटूट विश्वास भी होता है। विश्वास ही तो प्रेम को जिन्दा

इसके अलावा दूसरों के दोष देखना जब किसी व्यक्ति की आदत बन जाती है तो वह उसके गुण नहीं देख पाता; जबकि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ गुण भी अवश्य होते हैं। दूसरी ओर उसकी यह प्रवृत्ति बन जाती है कि वह अपने को ऊँचा और बड़ा समझने लगता है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति में झूठे घमण्ड को जन्म देती है जो वास्तव में एक बड़ा दुर्गुण है। इस दुर्गुण से कोई भी व्यक्ति आत्मनिरीक्षण नहीं कर पाता।

मान लीजिए कि आपके मुहल्ले में कोई व्यक्ति वेश्यागामी है, लेकिन मुहल्ले में वह बड़े मेल-जोल से रहता है, किसी की बुराई-भलाई में नहीं है, वक्त-बे-वक्त सबके काम आता है, किसी की बहू-बेटी को भी बुरी निगाह से नहीं देखता, तो क्या उसे बुरा व्यक्ति मान लेना उचित है? सच तो यह है कि प्रायः समाज की प्रताड़ना व्यक्ति को कुपथगामी बना देती है। एक कहावत है कि 'आदमी का कुछ बुरा नहीं होता।' इन बातों को हमें थोड़ी गहराई से सोचना चाहिए। जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं कि गहराई से देखने पर यही पायेंगे कि किसी व्यक्ति में यदि कोई तथाकथित दोष है तो परिस्थितियों-वश पैदा हुआ है, यदि किसी व्यक्ति की शादी नहीं हुई, अथवा जवानी में ही उसकी पत्नी मर गई और फिर लोगों ने उसकी शादी नहीं कराई, ऐसी हालत में यदि उसके किसी स्त्री से अवैध सम्बन्ध हो जाएँ अथवा वह वेश्यागामी हो जाए तो वह स्वयं इसके लिए कहाँ तक दोषी है? दरअसल ऐसे लोगों की उपेक्षा या छिद्रान्वेषण नहीं करना चाहिए बल्कि उन्हें तो सँभालना चाहिए। किसी कवि ने लिखा है—

उपर्युक्त कथा में बड़े भाई रमेश ने सुरेश के प्रति बड़ा युक्ति-
पूर्ण दृष्टिकोण रखा। अपने प्रेम और सहानुभूति से उसे प्रेरणा
दी, उठाया। नये सिरे से दूसरा काम करने में सुझाव दिए और
मदद की। और अन्त में इस सद्व्यवहार और दूरदर्शिता का बड़ा
मीठा फल निकला। सुरेश ने अपनी पिछली कमज़ोरियों पर
विजय पाई और नए काम में सफल हुआ। किन्तु इससे भी मीठा
फल यह निकला कि दोनों भाइयों के बीच जो एक गहरी खाई बन
जाने का वातावरण उपस्थित हो गया था, वह टल गया। सद्-
व्यवहार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने उस खाई को प्रेम से पाट
दिया।

इसलिए छिद्रान्वेषण नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह व्यक्ति
को व्यक्ति से दूर फेंक देता है।

आजकल हमारे देश में कुछ ऐसी राजनैतिक हवा चली हुई
है कि जिसने आम आदमी के स्वभाव में छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति
पैदा कर दी है। विरोधी दल सत्तारूढ़ को भ्रष्टाचारी और
नाक़ाबिल बताता है और सत्तारूढ़ दल विरोधियों पर प्रतिक्रिया-
वादी और साम्प्रदायिक अथवा कम्युनिस्ट होने का आरोप
लगाता है। इसका फल यह हो रहा है कि लोग ठोस काम न करके
एक-दूसरे की नुक्ताचीनी में अपनी शक्ति बर्बाद कर रहे हैं।

आजकल एक औसत दर्जे के व्यक्ति की प्रवृत्ति क्या है, इसका
असली चित्रण लेखक को एक कॉफी हाउस में मिला। बराबर की
मेज़ पर तीन व्यक्ति जलपान कर रहे थे। सामयिक विषयों पर
गपशप जारी थी। एक नौजवान सज्जन भ्रष्टाचारी मन्त्रियों,
अफसरों और चोर-बाज़ारी करने वाले व्यापारियों की कटु
आलोचना कर रहे थे। वे बड़े पुरज़ोर तरीक़े से मेज़ पर घूँसे
मार-मारकर कहते थे—

"——चारी मन्त्रियों को देशनिकाला दे देना चाहिए। मगर

रमने वाली शक्ति है। अन्ततोगत्वा रमेश ने सारी घटना को अपने ढंग से सोचा और यही निष्कर्ष निकाला कि नातजुर्बेकारी के कारण सुरेश धोखा खा गया। साथ ही रमेश छोटे भाई की भूल को भी समझ गया कि उसने बिगड़ते हुए काम की सूचना उसे न दी। रमेश दूरदर्शी था; सारी स्थिति का नक्शा उसके सामने खिंच गया। इस टोटे के आघात से सुरेश भी बड़े भाई के सामने क्षुब्ध और लज्जित था। रमेश ने निश्चय किया कि भाई को उठाना है, इस समय उसे आश्वासन, सहानुभूति और मार्गदर्शन की आवश्यकता है। उपेक्षा उसे और गहरे गर्त में ढकेल देगी जिसके परिणाम काफी बुरे भी निकलेंगे।

भाग्य की बात जहाँ कई अवसरों पर व्यक्ति को निकम्मा बना देती है, कुछ दूसरे मौकों पर बड़ी लाभकारी भी साबित होती है। रमेश ने सुरेश के बारे में यही राय क़ायम की कि बेचारे का भाग्य उल्टा था सो मुसीबत मे पड़ गया, वर्ना लड़का होशियार और सजीदा है। जब वक्त उल्टा होता है तो बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। फलत: रमेश ने जब ऐसा दृष्टिकोण अख्तियार किया तो सुरेश को दोषी नही पाया, और इसलिए वह उससे घृणा नही कर सका।

यह एक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति में जहाँ कमज़ोरियाँ और कमियाँ होती है, दूसरी ओर उसमें कुछ गुण और खूबियाँ भी होती हैं। व्यक्ति को उठाने के लिए यह जरूरी होता है कि उसकी खूबियों को उभारा जाये; उसके गुणो को विकसित किया जाए। फिर तो वह अपनी कमजोरियो और कमियों पर स्वयं काबू पा लेता है। किन्तु इसके विपरीत जब छिद्रान्वेषण और कटु आलोचना द्वारा उसके अवगुणों को उभा
सद्‌वृत्तियों को दबा दि
मे धकेल दी जाती हैं।

उपर्युक्त कथा मे बड़े भाई रमेश ने सुरेश के प्रति बड़ा युक्ति-पूर्ण दृष्टिकोण रखा। अपने प्रेम और सहानुभूति से उसे प्रेरणा दी, उठाया। नये सिरे से दूसरा काम करने में सुझाव दिए और मदद की। और अन्त में इस सद्व्यवहार और दूरदर्शिता का बड़ा मीठा फल निकला। सुरेश ने अपनी पिछली कमजोरियो पर विजय पाई और नए काम में सफल हुआ। किन्तु इससे भी मीठा फल यह निकला कि दोनों भाइयो के बीच जो एक गहरी खाई बन जाने का वातावरण उपस्थित हो गया था, वह टल गया। सद्-व्यवहार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने उस खाई को प्रेम से पाट दिया।

इसलिए छिद्रान्वेषण नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह व्यक्ति को व्यक्ति से दूर फेंक देता है।

आजकल हमारे देश मे कुछ ऐसी राजनैतिक हवा चली हुई है कि जिसने आम आदमी के स्वभाव में छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति पैदा कर दी है। विरोधी दल सत्तारूढ को भ्रष्टाचारी और नाक़ाबिल बताता है और सत्तारूढ़ दल विरोधियों पर प्रतिक्रिया-वादी और साम्प्रदायिक अथवा कम्युनिस्ट होने का आरोप लगाता है। इसका फल यह हो रहा है कि लोग ठोस काम न करके एक-दूसरे की नुक्ताचीनी में अपनी शक्ति बर्बाद कर रहे हैं।

आजकल एक औसत दर्जे के व्यक्ति की प्रवृत्ति क्या है, इसका

भ्रष्टाचारी साबित हो जाने पर भी सरकार मन्त्रियों से कुछ नहीं कहती। उनके मामले दबा दिए जाते हैं।...

भ्रष्टाचारी अफसरों की सारी सम्पत्ति सरकार को जब्त कर लेनी चाहिए और उन्हें हमेशा के लिए नौकरी से अलग कर देना चाहिए। मगर अफसरों पर भ्रष्टाचार के मुकदमे चलते हैं और अन्त में निर्दोष क़रार दे दिये जाते हैं।...

जमाखोरों और चोरबाजारी करने वाले व्यापारियों को सरेबाजार कोड़े लगवाने चाहिए। उनके व्यापार-लाइसेंस रद्द कर देने चाहिए।"

इन सज्जन के कथन से यह मालूम होता था कि अगर इनके हाथ में शासन की बागडोर दे दी जाए तो शायद एक दिन में भ्रष्टाचार को उखाड़ फेंकेंगे।

और अगले दिन किन्हीं दो दूसरे मित्रों के साथ वही नौजवान सज्जन कॉफी हाउस में जलपान कर रहे थे। वे एक मित्र से बोले —"भई जैन साहब ! मकान का नक्शा मैंने आपको दे ही दिया है, और मैंने तो मकान बनाना भी शुरू कर दिया है। अब नक्शा पास कराना आपका काम है। आप शर्मा ओवरसियर से सीधी बात करो कि नक्शा पास करना है और क्या लेना है। आजकल कोरी बातों से काम नहीं चलता। हम तो इसी बात में विश्वास करते हैं कि पैसे दो और काम कराओ, वर्ना कोई तुम्हारा काम क्यों करेगा ? आप कल मुझे जवाब देना और हाथ-के-हाथ पैसे ले जाना। परसों को पास-शुदा नक्शा मेरे पास आ जाना चाहिए।"

और यह दुरंगा चरित्र अकेले इस नौजवान का हो, ऐसा नहीं है। आज अधिकांश लोग समाज में जिन कार्यों के लिए दूसरों की निन्दा करते हैं, स्वयं भी उनमें ही लिप्त हैं। वस्तुतः छिद्रान्वेषी लोग दूसरों का कर्तव्य निश्चय करने में बड़ी ही तत्परता दिखाते हैं—"

इस काम को यूँ न करके इस तरह करना चाहिए था"—"अब उसे चाहिए कि ऐसा करे।" इस तरह के नारे और फ़तवे दूसरों के लिए आप आमतौर पर छिद्रान्वेषी लोगों से सुनेंगे। लेकिन सच्चाई यह है कि यदि व्यक्ति दूसरों का कर्तव्य निश्चित करने की बजाय स्वयं अपना कर्त्तव्य-पालन करे तो सारे समाज का नक्शा ही बदल जाए। यदि हम सब लोग थोड़ा कष्ट उठाकर यह निश्चय कर लें कि चोरबाजार से कोई चीज नहीं खरीदेंगे और रिश्वत देकर कोई काम नहीं कराएँगे, फिर देखिए भ्रष्टाचार इस तरह ग़ायब हो जाएगा जैसे गधे के सिर से सींग।

अपने को पहचानो।

आत्मानं विद्धि

महापुरुषों का कथन है कि संसार में सबसे कठिन कार्य है—'अपने को पहचानना'। इसी ओर इशारा करते हुए महाकवि 'जिगर' ने एक शे'र कहा है :—

उनसे मिलने को तो क्या कहिए 'जिगर'
ख़ुद से मिलने को जमाना चाहिए।

वास्तव में स्वयं को पहचानने में व्यक्ति को काफी जमाना लग जाता है। ख़ुद को जानना एक गहरे अहसास का विषय है और उस अहसास में व्यक्ति को स्वयं अपने अन्तः में झाँकना होता है, अपना विश्लेषण करना होता है। अपने को पहचानना जीवन की सबसे बड़ी सफलता है—जीवन का सबसे बड़ा ज्ञान है।

वस्तुतः अपने को पहचानने वाली बात के एक नहीं अनेक पक्ष हैं। कई पक्ष बड़े सूक्ष्म अनुभूति के हैं। किन्तु सभी पक्ष प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यवहार से सम्बन्धित हैं; वह व्यवहार चाहे लोक के प्रति हो या अपने प्रति। विषय के किसी सूक्ष्म विवेचन

में जाने से पहले आइए ! इसके कुछ स्थूल व्यावहारिक पक्षों पर विचार करें।

नीति का एक श्लोक है :—

को कालः, कानि मित्राणि; को देशः व्यय आगमौ ।
का च हं; का च मे शक्तिः, इति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥

अर्थात् व्यक्ति को बार-बार इस बात पर विचार करना चाहिए कि समय (जमाना) कैसा चल रहा है ? मेरे मित्र कौन-कौन हैं ? जिस देश में मैं रह रहा हूँ वह देश कैसा है ? अर्थात् मैं किस तरह के वातावरण में जीवनयापन कर रहा हूँ ? मेरी आमदनी कितनी है और खर्च कितना है ? मैं क्या हूँ ? यानी समाज में मेरी स्थिति कैसी है। मेरे पास अपनी शक्ति कितनी है ?

यह सब कहने से नीतिकार का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त बातों के प्रकाश में अपने को पहचानकर चले ताकि उसे अपनी सही स्थिति का ज्ञान रहे। जैसे यदि उसकी आमदनी कम और खर्च ज्यादा है तो निश्चय ही कष्ट में रहेगा। इस कष्ट को महँगाई, जमाने या भाग्य के सिर न थोपकर उसे स्वयं अपनी ओर देखना चाहिए, तभी कष्ट से मुक्ति मिल सकती है। जब वह अपनी ओर देखेगा और ईमानदारी से अपने को पहचानेगा तो कष्ट पाने का कारण उसे स्वयं में ही मिल जायेगा। फिर वह उसके निवारण में भी तत्पर होगा। या तो अपना खर्च कम करेगा अथवा अपनी आमदनी बढ़ाने के ज़रिए निकालेगा।

इसी प्रकार उसे अपनी शक्ति पहचानकर ही किसी शत्रु से लड़ना चाहिए। मित्रों का रुख देखकर ही उनसे सहायता की अपेक्षा करनी चाहिए। देश और काल को देखकर ही उसके अनुरूप आचरण करना चाहिए।

□ आप खुद अपनी नजरों में कैसे हैं ?

आपने किस बड़े दुकानदार से कोई सौदा खरीदा और जो

ए का नोट दिया। दुकानदार ने भूल से आपको ज्यादा पैसे
पस कर दिए। आपके मन में प्रश्न उठता है कि ज्यादा पैसे उसे
टा दिए जाएँ या नहीं? सद्‌वृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों में एक
द्व चला। ईमानदारी कहती है कि आपको ज्यादा आए हुए पैसे
टा देने चाहिए, लेकिन दुष्प्रवृत्ति कहती है आए हुए पैसों को
टाना मूर्खता है। दुष्प्रवृत्ति अपने पक्ष में दलील देती है कि इस
त में तुम्हारी क्या ग़लती है? ज्यादा पैसे लौटाने की गलती
कानदार ने की है; इसके लिए दुकानदार खुद जिम्मेदार है, तुम
हीं! उधर ईमानदारी की तरफ़ से दलील आती है। वह कहती
—आखिर जो भी हो, तुम ज्यादा पैसे लेने के हक़दार तो नहीं
। फिर दुष्प्रवृत्ति कहती है—अरे छोड़ो इन बातों को! यह
कानदार रात-दिन ग्राहकों को लूटता है, ब्लैक मार्केट करता
; ऐसे आदमी को पैसे वापस करने की क्या जरूरत है?

आप दुष्प्रवृत्ति के बहकावे में आ जाते हैं और जल्दी से वहाँ
सामान उठाकर चल देते हैं। इस स्थान पर आप अपने को
मझिए कि दुष्प्रवृत्ति की दलील से आपने अपने को युक्तिसंगत
तो ठहरा लिया लेकिन आप खुद ही अपनी नज़रों में गिर गए।
अन्तर्मन ने यह फ़तवा दे दिया कि आपने जान-बूझकर बेईमानी
की। इसीलिए आप दुकान से जल्दी सामान उठाकर चल दिए कि
कहीं आपकी बेईमानी पकड़ी न जाए। भले ही आप इस बात पर
गम्भीरतापूर्वक कुछ सोच-विचार न करें लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से
एक कायरता और हीन भावना आपके अन्दर आत्मविश्वास की
कमी और साहसहीनता को जन्म देगी और आपके नैतिक बल को
कमजोर बना देगी।

किन्तु यदि आपने इस मौके पर सद्‌वृत्तियों को उभारा होता
और दुकानदार को उसके ज्यादा आए पैसे लौटा दिए होते तो
बात बिल्कुल दूसरी ही होती। पैसे लौटाते समय आपका मन

ईमानदारी के उत्साह से भरा होता और इस ईमानदारी के फल-स्वरूप दुकानदार की ओर से जो आदर आपको मिलता वह आपके लिए गर्व की वस्तु होती। तब आप जल्दी से दुकान से निकलकर भागते नहीं, बल्कि चेहरे पर एक मुस्कराहट और मन में एक दृढ़ता लिये हुए आते और आपके इस आचरण से अनायास ही आप अपनी नजरों में ऊँचे उठते। आपका नैतिक बल, आत्म-विश्वास और साहस बढ़ जाता।

अब आप स्वयं अपने को पहचानिए! मन की दुर्बलता के कारण क्या आप कुप्रवृत्तियों की ओर झुक जाते हैं अथवा कष्ट पाकर भी नैतिकता का पालन पसन्द करते हैं? आप ग़लत हैं या सही, यह स्वयं ही समझ लोगे। यही आत्मविश्लेषण कहलाता है।

□ आप अपने को धोखा तो नहीं दे रहे हैं?

किसी शायर ने बड़ा अच्छा शे'र कहा है —

हर शख्स बनाता है ईमान का मयार,
अपने लिए कुछ और है, ग़ैरों के लिए और।

वास्तव में ईमानदारी की परिभाषा जब हम अपने लिए एक तरह की और दूसरों के लिए दूसरी तरह की बना लेते हैं तो हम अपने को ही धोखा देते हैं।

एक डाक्टर साहब अपने रोगियों को सीधा-सादा इलाज बताते थे, ज्यादा आडम्बर की बात नहीं करते थे। उन्होंने एक नया कम्पाउण्डर रखा। कम्पाउण्डर बहुत चुस्त-चालाक आदमी था। डाक्टर साहब के पास एक नया मरीज आया, बोला—"मैं अपने मर्ज से बहुत परेशान हूँ। आप मुझे इंजैक्शन लगाकर जल्दी ठीक कर दीजिए।" डाक्टर ने रोगी की परीक्षा की और उसे बताया कि उसका रोग कोई ज्यादा गम्भीर नहीं है और न इंजैक्शनों की ही जरूरत है, वह साधारण इलाज से ही ठीक हो ... रोगी को दवा दे दी और पथ्य-परहेज बता

दिया। अगले दिन वह रोगी उनके पास न आकर बराबर के दूसरे डाक्टर के पास पहुँच गया। उस डाक्टर ने रोगी को फौरन इंजेक्शन ठूँस दिया। डाक्टर साहब का कम्पाउण्डर यह सब बात देख रहा था। वह डाक्टर साहब से बोला, "आप तो बहुत सीधे आदमी हैं। आजकल इतना सीधा बनने से काम नहीं चलता। देखिए ज़रा वाले मरीज़ को आपने इंजेक्शन नहीं लगाया, वह मरीज़ आपके हाथ से निकल गया। आज वह बराबर के दवाखाने में पहुँच गया। वहाँ डाक्टर ने उसे एकदम इंजेक्शन लगा दिया। मरीज़ की तसल्ली भी हो गई और डाक्टर साहब की कमाई भी हो गई।"

डाक्टर बोले—"लेकिन उस मरीज़ को इंजेक्शन की जरूरत ही नहीं थी। खामखा ही वह अपने मर्ज़ को बहुत बड़ा समझे हुए था। वह तो मामूली इलाज से ही ठीक हो सकता है।"

कम्पाउण्डर कहने लगा—"अजी डाक्टर साहब, ज़रा ज़माने की हवा को पहचानिए। आजकल वही डाक्टर बड़ा और बढ़िया समझा जाता है जो इंजेक्शन लगाए और ऊँची क़ीमत की दवा दे। आजकल रुपये की पूछ है और रुपया इसी तरह कमाया जाता है।"

डाक्टर महोदय को कम्पाउण्डर की सलाह जँच गई और उन्होंने मरीज़ों के साथ अपना रवैया बदल दिया। अब वे बे-जरूरत भी मरीज़ को इंजेक्शन लगाते; कई-कई तरह की दवाइयाँ देते। एक दिन एक बच्चे को उन्होंने जब बे-जरूरत इंजेक्शन लगाया तो दवाखाने में ही उसकी दशा बिगड़ने लगी। हालत इतनी खराब हुई कि मरीज़ अब गया कि अब गया। डाक्टर साहब के हाथों के तोते उड़ गए। बड़ी कोशिश और उपचार के ... घण्टे में बच्चे की हालत सुधर पाई।

घटना ने डाक्टर साहब की आँखें खोल दीं। उन्होंने

गलतियों का विश्लेषण किया और स्वयं को दोषी माना। इसके विपरीत उन्होंने तब क्रम 'उपहार' को मोर्चों से हटा दिया और उनके सैनि-कों के पुराने पदों पर ला दिया।

और आपकी ऐसा करने के बारे में पश्चाताप नहीं, इसलिए गांधी जी ने इसकी निम्न में पत्र और लिखा है। वे नियमित रूप से अपनी डायरी लिखते थे। डायरी लिखने का उद्देश्य यही होता है कि व्यक्ति अपने दिन भर के कार्यों का लेखा-जोखा करके इस बात का निरीक्षण करे कि उसने कोई गलत काम तो नहीं किया है?

किन्तु गलतियाँ प्रत्येक मनुष्य से होती हैं। यहाँ तक कि यह कहावत बन गई है कि 'गलती करना मनुष्य का स्वभाव है।' बंगला भाषा में एक कहावत है—'गाछ पाथर भूल कोरे न भूल कोरे मानुष' अर्थात् पेड़-पत्थर से भूल नहीं होती, भूल हमेशा इन्सान ही करता है। भूल करना कोई बुरी बात नहीं है, सवाल भूल पहचानकर उसे स्वीकार कर लेने का है।

वास्तव में गलती स्वीकार कर लेना बड़ी बात होती है। गलती पहचानकर उस पर अड़े रहना अपने को धोखा देना होता है। संसार के अनेक महापुरुषों एवं विशेष रूप से गांधी जी ने बराबर अपनी भूलें स्वीकार की हैं और इस स्वीकृति ने उन्हें महान् बनाया है। अपने को पहचानिए—क्या आप अपने को धोखा तो नहीं देते हैं?

☐ कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य क्या है?

क्या ठीक है और क्या ग़लत है अथवा क्या पाप है, क्या पुण्य है, यह जानने के लिए धर्म-ग्रन्थों को टटोलने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य का मन स्वयं कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय कर लेता है। सही और ग़लत कर्मों में भेद मालूम करने का एक सीधा-सा 'गुर' यह है कि जिस काम के करने में मन में दुर्बलता आती है, वही बुरा है, वही पाप है। वस्तुतः मन की दुर्बलता ही पाप

कहलाती है। यदि कोई व्यक्ति छिपकर प्याज़ भी खाता है तो प्याज खाना भी उसके लिए पाप-कर्म है। दूसरा व्यक्ति खुले खजाने मांस खाता है, उसके मन में मांस-भक्षण के प्रति कोई झिझक नहीं है तो उसका यह कर्म पाप नहीं है।

आत्मनिरीक्षण और अपने को पहचानने के बहुत-से उदाहरण दिए जा सकते हैं। किन्तु मन की दुर्बलता को पहचानना इन सबकी कसौटी होती है।

पीछे जो हमने स्वयं को धोखा देने की बात कही है, उसे और कुछ दैनिक व्यवहारों के साथ घटाइए। एक व्यक्ति अपना कर्ज़ वसूल करने के लिए क़र्ज़दार के सिर पर चढ़ जाता है। उसे खरी-खोटी कहता है, तंग करता और क़र्ज़ न चुका सकने के लिए उसे लांछित भी करता है। लेकिन दूसरा व्यक्ति जब उससे अपना क़र्ज़ वसूल करने आता है तो वह घर में छिप जाता है अथवा बहाने बनाता है; रुपया होते हुए भी देना नहीं चाहता तो यह सरासर अपने को धोखा देना है।

इसी तरह यदि कोई व्यक्ति चोरबाज़ारी करता है और अपने पक्ष में यह दलील देता है कि आजकल दुनिया ही चोरबाज़ारी कर रही है, तो उसका कर्म न्यायसंगत नहीं बनता। वह भी अपने को और दूसरों को धोखा देने के लिए यह दलील देता है। किन्तु उसका अन्तर्मन जानता है कि वह ग़लत कर रहा है।

व्यक्ति जान-बूझकर जो काम अपने अन्तर्मन के विरुद्ध करता है उसके पीछे उसका स्वार्थ छिपा होता है। ऐसे कर्मों से एक बार की स्वार्थ-सिद्धि भले ही हो जाए लेकिन उसके लिए व्यक्ति को कितना भारी मूल्य चुकाना पड़ता है इसका अहसास उसे कम होता है। वस्तुतः वह आत्मबल, ईमानदारी जैसे ऊँचे मूल्य की वस्तुएँ देकर स्वार्थसिद्धि जैसी घटिया और सस्ती चीजें खरीदता है। ...ली काँच की चमक-दमक में आकर अपनी गाँठ के हीरे खो

बैठता है।

व्यक्ति को चाहिए कि इसी स्थल पर आत्मनिरीक्षण करे, अपने को पहचाने। जो सौदा वह कर रहा है उसका सही मूल्यांकन करे। सच तो यह है कि इस बाजार में आँखें खोलकर सौदा करने वाले व्यक्ति कम ही होते हैं। अधिकांश लोग टोटे का सौदा ही ले जाते हैं।

□ कुछ अन्य पक्ष

सत्य को स्वीकार करने, सत्य आचरण करने, सत्य का पक्ष लेने और सत्य को जीवन में उतारने से मनुष्य का आत्मबल बढ़ता है, वह ऊँचा उठता है, वह जीवन मे सच्ची शान्ति पाता है। सच्चे व्यक्ति को ससार मे किसी से भय नही होता।

आइए कुछ उदाहरणो से सत्य-असत्य का विवेचन करें। लेखक ने बचपन में एक कहानी पढ़ी थी—

एक मुर्गा कूड़े के ढेर पर दाने चुगकर खा रहा था कि इतने मे उधर से एक बिल्ली आ निकली। मुर्गा बिल्ली को देखकर उड़ा और मकान की छत पर जा बैठा। बिल्ली ने शिकार हाथ से निकलता देखा तो उसने मुर्गे को चकमा देना चाहा। वह मुर्गे से बोली—"मुर्गे भाई! तुम मुझसे बिल्कुल मत डरो। आओ, मेरे पास आओ! शायद तुम्हे मालूम नही कि कल जंगल के सब जानवरों की एक पचायत हुई थी और उसमें यह फैसला हो गया है कि कोई जानवर किसी दूसरे जानवर को न मारे। इसलिए तुम्हे अब मुझसे डरने की कोई जरूरत नही है। आओ पास बैठकर कुछ बातें करें।"

मुर्गा बोला—"बिल्ली मौसी! मुझे तो ऐसी किसी पंचायत की कोई खबर नही मिली। अगर वाकई कोई पंचायत हुई थी तो मुझे क्यों नही बुलाया गया?"

इसी बीच दूर से दो शिकारी कुत्ते आते नज़र

बिल्ली वहाँ से भागने लगी। मुर्गे ने कहा—"मौसी, अगर पंचायत हो गई है तो तुम कुत्तों से डर कर क्यों भाग रही हो?"

बिल्ली बोली—"हो सकता है कि तुम्हारी तरह उन्हें भी पंचायत के निर्णय की खबर न हो।"

किसी ने सच ही कहा है कि झूठ के पाँव नहीं होते। आप किसी स्वार्थ से कोई झूठ बोलते हैं, किन्तु साथ ही मन में यह सन्देह भी रहता है कि झूठ कहीं खुल न जाए। और फिर उसे सच साबित करने के लिए बीस झूठ और बोलने पड़ते हैं। लेकिन इतना सब करने पर भी झूठ की कलई खुल ही जाती है और सच्चाई सामने आ जाती है। अनेक हत्याएँ, चोरी, गबन, डकैती तथा दूसरे अपराधों पर झूठ का पर्दा डालकर उन्हें छिपाने की कोशिश की जाती है लेकिन देर-सवेर से उनका पर्दाफाश हो जाता है और सत्य प्रकट हो जाता है।

असत्याचरण से व्यक्ति चिन्तित और परेशान रहने लगता है। उसके मन के अन्दर दुर्बलता आ जाती है और मन दुर्बल होने पर जीवन ही दुर्बल हो जाता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। आप सिगरेट पीते हैं। कुछ दिन बाद आप देखते हैं कि आपका लड़का भी सिगरेट पीने लगा है, हालाँकि वह आपसे छुपकर पीता है। आप उसे डाँटते हैं या समझाते हैं कि "सिगरेट पीना बुरा है, इससे फ़िज़ूलखर्ची होती है और तन्दुरुस्ती खराब होती है।" लेकिन आप खुद सिगरेट पीना नहीं छोड़ते। और उधर अगर लड़का सिगरेट नहीं छोड़ता तो आप उस पर बिगड़ते हैं, प्रताड़ना करते हैं। ऐसे मौके पर आप अपने लिए यह दलील देते हैं कि "मेरी तो यह बहुत दिनों की आदत हो गई, अब छूटनी मुश्किल है, और इसके नुकसान देख-देखकर ही तो मैं लड़के को सिगरेट से बचने के लिए कहता हूँ कि मैं तो इस चक्कर में फँस ही गया, तू मत फँस। मेरे तजुर्बे से

को ग्रहित करते हैं। 'घमण्डी का सिर नीचा' यह एक ग्राम
वत है।

लोभ

लालच भी ग्रादमी के विवेक को एक बडी हद तक कुण्ठित
देता है। समाचार-पत्रों में प्रायः ऐसे समाचार पढ़ने को मिला
ते हैं कि लोगों ने थोड़े-से रुपयों के लालच में कत्ल कर दिए।
च का जन्म स्वार्थ से होता है और जब स्वार्थ-सिद्धि ही
मों का लक्ष्य बन जाती है, व्यक्ति लालच मे चिपट जाता है,
की दलदल में फँस जाता है, तो स्वार्थ और विवेक के बीच
पर्दा खड़ा हो जाता है। फलतः लालची व्यक्ति विवेकशीलता
जगा नहीं पाता।

मोह

मोह का अर्थ है अज्ञान। अज्ञान भी विवेक का शत्रु है। ज्ञान
श है, अज्ञान अन्धकार है। एक बच्चा आग को छूना चाहता
योंकि उसे इस बात का ज्ञान नहीं है कि आग उसके हाथ को
देगी। इसीलिए वह इस अविवेकपूर्ण कार्य मे अग्रसर होता है।
जब बच्चे को आग की तरफ बढ़ता हुआ देखती है तो उसे वहाँ
हटा देती है क्योंकि उसे इस बात का ज्ञान है कि आग बच्चे के
को जला देगी। इसलिए मनुष्य को ज्ञान के प्रकाश में चलना
हिए।

मात्सर्य

मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या, दूसरों के प्रति द्वेष। इस आवेश के
व में व्यक्ति अपने प्रतिद्वन्द्वी का हर कीमत पर अहित करना
हता है। ईर्ष्या की आग मनुष्य को इतना अन्धा बना देती है
वह अपने हित-अहित का ज्ञान भी खो बैठता है और बहुत
विवेकहीन होकर अपना ही अहित कर लेता है। कैकेयी का
हरण इतिहास-प्रसिद्ध है। ईर्ष्या पर 'पञ्चतन्त्र' में एक कथा

भाती है जो बड़ी ही तत्वपूर्ण है—

किसी कुएँ में दो मेंढकों के परिवार रहते थे। किसी बात पर दोनों में झगड़ा हो गया। मामला यहाँ तक बढ़ा कि दोनों परिवार ईर्ष्या की आग में झुलसने लगे, और हर समय एक-दूसरे के अहित की बात सोचते थे। एक परिवार के मुखिया का नाम गंगदत्त था। गंगदत्त ने ईर्ष्याभिभूत होकर अपने प्रतिद्वन्द्वी के परिवार को नष्ट करने की एक योजना बनाई। वह कुएँ से बाहर निकला। थोड़ी दूर पर 'प्रियदर्शन' नाम का एक साँप अपने बिल में रहता था। साँप बूढ़ा हो गया था इसलिए मुश्किल से ही अपने लिए भोजन जुटा पाता था। गंगदत्त उस साँप के पास पहुँचा और बोला—"मित्र प्रियदर्शन! मैंने तेरे भोजन का प्रबन्ध कर दिया है, मगर एक शर्त स्वीकार करनी पड़ेगी।"

प्रियदर्शन बोला—"वह शर्त भी कहो!"

गंगदत्त कहने लगा—"देखो! मेरे कुएँ में जो दूसरा परिवार रहता है उससे मेरे परिवार की भारी शत्रुता हो गई है और मैंने उन्हें नष्ट करने का निश्चय कर लिया है। सो मैं तुझे उस कुएँ में ले जाऊँगा। कुएँ में कई बिल बने हुए हैं। तू आराम से किसी बिल में रहना। मैं तुझे अपने प्रतिद्वन्द्वियों की पहचान करा दूँगा, और तू उन्हें एक-एक करके खा जाना, किन्तु मेरे परिवार से कुछ न कहना। जब प्रतिद्वन्द्वी परिवार के सब मेंढक समाप्त हो जाएँ तो फिर तुम कुएँ से वापस आ जाना।"

प्रियदर्शन साँप मन-ही-मन गंगदत्त की मूर्खता पर हँसा किन्तु प्रत्यक्ष में कहने लगा—"ठीक है भाई गंगदत्त, तेरी शर्त मंजूर है। तू फौरन मुझे कुएँ में ले चल, मैं बहुत भूखा हूँ।"

गंगदत्त प्रियदर्शन को कुएँ में ले गया और प्रतिद्वन्द्वी परिवार के मेंढकों को पहचनवा दिया। साँप ने धीरे-धीरे उन्हें भक्षण करना शुरू कर दिया। जैसे-

खाता, गंगदत्त खूब खुश होता था। धीरे-धीरे सांप ने उस परिवार के सभी सदस्यों को खा डाला।

तब गंगदत्त उससे बोला—"मित्र प्रियदर्शन ! अब तुम शर्त के अनुसार अपने घर वापस चले जाओ।"

सांप बोला—"घर वापस जाकर मुझे भूखा नहीं मरना है। मैं ऐसी मूर्खता नहीं करूंगा।"

और अगले दिन से सांप ने गंगदत्त के बच्चों को खाना शुरू कर दिया। अब गंगदत्त की आंखें खुली। उसे यह अनुभव होने लगा कि *ईर्ष्याभिभूत होकर उसने स्वयं अपनी ही मौत बुला ली है।* किन्तु अब क्या हो सकता था ! सांप को वहां से हटाना उसके वश की बात नहीं थी। अन्त में एक-एक करके सांप ने गंगदत्त के सारे बच्चे खा डाले। फिर एक दिन सांप जब गंगदत्त को खाने के लिए लपका तो गंगदत्त कहने लगा—"भाई प्रियदर्शन, तू मुझे मत खा। क्योंकि मुझे खा लेने पर तेरा एक दिन का काम चलेगा। लेकिन अगर तू मुझे छोड़ देगा तो मैं बाहर से और मेंढकों को बहला-फुसलाकर तेरे भोजन के लिए ले आऊंगा। चूंकि तू मेरा मित्र है इसलिए तेरे भोजन का प्रबन्ध करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।"

प्रियदर्शन गंगदत्त की बात मान गया और उसे दूसरे मेंढकों को लाने भेज दिया। लेकिन गंगदत्त को दूसरे मेंढक थोड़े ही लाने थे ! वह तो इस बहाने अपनी जान बचाकर भागा था। गंगदत्त फिर कभी उस कुएं में नहीं गया और हमेशा अपनी गलती पर पछताता रहा।

□ दूरदर्शिता

मारता है। लेकिन मार खाकर भी मेमना रसोईघर में जाने से बाज नहीं आता। उसे वहाँ की बढ़िया-बढ़िया चीजें खाने का चस्का लग गया है। अब एक दिन ऐसा होगा कि रसोइए के हाथ और कुछ नहीं लगेगा तो वह चिढ़कर चूल्हे की जलती हुई लकड़ी मेमने को मारेगा। फलतः मेमने की ऊन में आग लग जाएगी। मेमना घबराकर सीधा रसोईघर से निकलकर सामने की ओर भागेगा। सामने ही राजा की घुड़साल है और घुड़साल में घोड़ों के लिए सूखी घास भरी है। मेमना वहाँ घुसेगा तो सूखी घास में आग लग जाएगी। उस आग से घोड़े भी जल जाएँगे। तब राजा घोड़ों के हकीम को बुलाएगा। घोड़ा चूँकि कीमती जानवर है और लड़ाई में काम आता है इसलिए राजा हर कीमत पर घोड़ों की जान बचाने की कोशिश करेगा। तुम्हें शायद यह नहीं मालूम कि जले हुए घोड़ों पर बन्दर की चर्बी लगाई जाती है। घोड़ों का हकीम राजा से बन्दरों की चर्बी मँगवाने के लिए कहेगा और राजा तुम सब बन्दरों को मरवाकर तुम्हारी चर्बी घोड़ों के लिए निकलवा लेगा। बन्दर कोई कीमती जानवर नहीं है। तुम्हारे मारे जाने पर राजा जंगल से और बन्दर पकड़वाकर मँगवा लेगा। इसलिए भलाई इसी में है कि हम लोग इस स्थान को छोड़ दें, नहीं तो जान से हाथ धोने पड़ेंगे।"

बूढ़े सरदार की बात सुनकर कुछ बन्दर तो उससे सहमत होकर चलने को तैयार हो गये, लेकिन दूसरे कुछ बन्दर कहने लगे कि "अरे! इस बुड्ढे का तो दिमाग खराब हो गया है। यूँ ही शेख-चिल्लियों जैसी बातें करता है। ऐसा होगा, फिर ऐसा हो जाएगा। भला राजमहल का हलवा-पूरी का भोजन और आराम की जिन्दगी छोड़कर जंगलों में पत्ते खाना और भटकना कौन-सी बुद्धिमानी है? हम यहाँ से नहीं जाएँगे।" जो बन्दर सरदार से सहमत थे उन्हें लेकर सरदार फौरन ही राजा की पशुशाला छोड़-

ना, ये मौक़े कंजूसी दिखाने के नहीं होते।"—"अजी कोई दी-ब्याह के मौक़ों पर बजट बनाकर चला जाता है ? ऐसे मौके र तो खर्च अधिक होता ही है। जिनका खाया है उन्हें खिलाना भी ड़ता है, जिसका ले चुके हो उसे देना भी पड़ेगा !" ऐसे माहौल में आप भी भावनात्मक उत्साह में आ जाते हैं और खर्च निश्चित रक़म से कहीं अधिक हो जाता है।

लेकिन जब ब्याह के भावनात्मक माहौल का नशा उतरता है, नाते-रिश्तेदार चले जाते हैं, घर का भीड़-भड़क्का कम होकर सामान्य वातावरण आता है तो आप देखते हैं कि निश्चित रकम से दो हज़ार रुपए अधिक खर्च हो गए हैं। वे दो हज़ार आपको चुकाने हैं।

ऐसे मौकों पर आदमी को अधिकांश रूप में क़र्ज़ लेकर देनदारी चुकानी पड़ती है। आमदनी इतनी है नहीं कि दो हज़ार धीरे-धीरे बचा लिया जाये। ऐसी स्थिति में दो हज़ार का क़र्ज़ भी उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है। जिस स्थिति का ज़िक्र हम यहाँ कर रहे हैं वह प्रायः आप लोगों के सामने आती है।

ऐसे मौक़ों पर ज़रूरत इस बात की होती है कि भावनाओं के प्रभाव से परे रहकर तर्क को प्रधानता दें; स्थिति को सही रूप में समझें। ऐसे अवसरों पर अधिक खर्च करने से बहुत थोड़े समय के लिए कुछ लोगों की वाहवाही मिलती है। इससे अधिक और कुछ नहीं। सच पूछिए तो इस वाहवाही का कोई स्थायी मूल्य नहीं होता। किन्तु अधिक खर्च का जो भार आपके ऊपर आएगा वह आपके लिए एक स्थायी सिरदर्द बन जाएगा।

दूसरी ओर यदि आप इस जश्न में अतिरिक्त खर्च नहीं करते हैं तो भी स्थिति में कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता। कदाचित् अधिक खर्च का सुझाव देने वाले मित्र-परिजन दो-चार दिन इधर-उधर कानाफूसी करते हुए कहेंगे—"अगर बारात में आतिशबाज़ी होती

तो रौनक़ ही कुछ और होती। बैंड के साथ नफ़ीरी होती तो समाँ ही कुछ और बँध जाता। ऐसे मौक़ों पर पैसे का मुँह नहीं देखना चाहिए।" इसी तरह दावत को टाल जाने का उलाहना भी मिलेगा। और इन उलाहनों का भी कोई स्थायी मूल्य नहीं होता। चार दिन बाद सब लोग अपने-अपने काम में लगकर इन क्षणिक बातों को भूल जाएँगे। किन्तु आप अधिक खर्च और क़र्ज़ की परेशानी से निश्चित रूप से बच जाएँगे।

ऐसे भावनात्मक आवेग शादी, ब्याह या पुत्रजन्म तक ही सीमित नहीं होते; जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे अवसर आते हैं। इसलिए सभी जगह भावनाओं पर नियन्त्रण पाकर तर्कसंगत काम करने चाहिए। आप स्वयं निरीक्षण कीजिए कि इन मामलों में आप कितने तर्कसंगत हैं।

□ भावनाएँ और व्यवहार

भावनाओं से व्यक्ति का व्यवहार बहुत प्रभावित होता है। किन्तु व्यवहार करते समय भी हमें तर्क और दूरदर्शिता एवं उदारता से काम लेना चाहिए। भावनाओं के आवेश में हम कोई ग़लत क़दम न उठा जाएँ, इस दिशा में सावधानी बरतनी चाहिए।

उदाहरण लीजिए! आपके पास साइकिल है। पड़ोसी जब-तब आपसे साइकिल माँगकर ले जाता है। आप कभी उसे इन्कार नहीं करते। आपका दृष्टिकोण साइकिल देने के समय यह रहता है कि "साइकिल जैसी छोटी चीज़ के लिए किसी को क्या इन्कार करना! यदि अपने से किसी का काम निकलता है तो यह बड़ी अच्छी बात है। आदमी को आदमी के काम आना ही चाहिए।" आपका यह उद्देश्य रहता है कि समाज के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बन सकें।

अब किसी दिन आप अपने पड़ौसी से धूप का चश्मा मँगवाते हैं। लेकिन उसके पास से आपको चश्मा नहीं मिलता। वह कोई

झूठा-सच्चा बहाना बनाकर इन्कार कर देता है। स्वाभाविक रूप से आपके मन में पड़ोसी के प्रति एक प्रतिक्रिया पैदा होती है कि 'देखो कितना खुदगरज आदमी है! हमारी साइकिल के लिए दिन-रात दरवाज़े पर खड़ा रहता है। और आज ज़रा हमने चश्मा माँगा तो भाई ने साफ़ इन्कार कर दिया।' आपके मन में तेज़ी से यह विचार उठता है कि 'आगे से हम उसे साइकिल के लिए साफ़ इन्कार कर देंगे।'

मोटे रूप से देखने में आपका निश्चय ठोस हो सकता है। आदान-प्रदान की बात तभी ठीक तरह से निभती है जबकि दोनों ही पक्ष सहयोग दें। जब वह आपको चश्मा नहीं दे सकता तो आप ही क्यों अपनी साइकिल दें ?

लेकिन इस मसले पर थोड़ा गहराई से सोचा जाये तो निष्कर्ष कदाचित् दूसरा ही निकलेगा।

पहली बात यह है कि हर व्यक्ति का दिलो-दिमाग, स्वभाव, व्यवहार और जीवन को देखने का चश्मा अलग होता है। यह जरूरी नहीं है कि हरेक व्यक्ति आपकी तरह ही सोचे और चले। संसार के लोगों में इस तरह का अन्तर होना बिल्कुल स्वाभाविक है। इस तथ्य से यह वास्तविकता सामने आती है कि आपका पड़ोसी भी आपकी तरह ही सोचे, यह जरूरी नहीं है।

दूसरी बात यह है कि आपने जो दूसरों के काम आने की अपने लिए एक व्यवहार-नीति बनाई है, वह अपने पड़ोसी या किसी दूसरे से पूछकर तो बनाई नहीं। वह आपने अपने अन्तर्मन की प्रेरणा से बनाई, क्योंकि आपको दूसरे के काम आने में, उन्हें अपनी चीज़ें देने में एक नैतिक सुख मिलता है। आपका मन सद्-भावनाओं से आप्यायित होता है। ऐसी हालत में यदि आप अपने मन के आनन्द को पड़ोसी के संकुचित व्यवहार के हाथ बेच देते हैं तो सोचिये कितने घाटे में जाते हैं!

जिस तरह की परिस्थिति का मैंने यहाँ उल्लेख किया है ठीक वैसी ही परिस्थिति एक-दो बार मेरे परम मित्र प्रसिद्ध पत्रकार श्री श्यामलाल पण्डित के समक्ष आई। श्री पण्डित स्वभाव से ही समाज-सेवी हैं। दूसरों के काम के लिए इधर-उधर दौड़ते-फिरते हैं। एक दिन किसी बहुत आवश्यक कार्य के लिए उन्होंने अपने द्वारा एक उपकृत व्यक्ति से एक दिन के लिए उसकी कार माँगी और पैट्रोल का खर्च स्वयं बर्दाश्त करना स्वीकार किया। लेकिन उस व्यक्ति ने कार खराब होने का बहाना करके साफ़ इन्कार कर दिया। इस बात पर पण्डित जी की पत्नी और पुत्र ने पण्डित जी की आलोचना प्रारम्भ कर दी।

बोले—"देख लिया जमाने का क्या हाल है! तुम्हीं हो जो लोगों के लिए इधर-उधर दौड़ते-फिरते हो। तुम अगर इस आदमी की मदद न करते तो आजकल यह जेल में होता। और अब तुम्हें कार को इन्कार कर दिया। सब अपना वक्त भूल जाते हैं। दुनिया अपने मतलब की है। आजकल ज्यादा परोपकारी बनने से काम नहीं चलता।"

पण्डित जी कहने लगे—"मैं किसी व्यक्ति के साथ भलाई इसलिए नहीं करता कि किसी समय मैं उससे भलाई का बदला चाहूँ। दूसरों से सहयोग और उनकी सेवा मेरा अपना स्वभाव बन गया है। अगर कोई आदमी अपने किसी छोटे स्वार्थवश मेरे काम नहीं आता चाहता तो इससे क्षुब्ध होकर मैं अपने सद्व्यवहार में क्यों अन्तर लाऊँ!" वास्तव में ऐसे संकुचित मनोवृत्ति के लोग क्रोध या घृणा के नहीं वरन् दया के पात्र हैं। मुझे तो उ[illegible] मूर्खता पर केवल हँसी आकर रह जाती है, क्योंकि वह यह समझता कि वह बड़ा कर रहा है। महात्मा ईसा ने तो अपने 'ग्र[illegible] देने वालों तक के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी कि "हे परम पिता! तू इन्हें माफ़ कर देना, क्योंकि ये लोग नहीं जानते कि

या कर रहे हैं।" और ये तो बहुत छोटी-छोटी बातें हैं। इनसे क्षुब्ध होकर हमें अपना अच्छा स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिए।

इस सन्दर्भ में एक किंवदन्ती है कि एक साधु किसी नदी के किनारे बैठा ईश्वर की उपासना कर रहा था। तभी नदी के पानी में एक बिच्छू बहता हुआ आया। साधु ने बिच्छू की प्राण-रक्षा के लिए पानी में हाथ डालकर उसे निकालना चाहा तो बिच्छू ने फौरन उसके हाथ में डंक मार दिया। साधु के हाथ में पीड़ा हुई और बिच्छू फिर पानी में जा गिरा। साधु ने फिर उसे निकालना चाहा तो बिच्छू ने फिर डंक मार दिया। जब तीसरी बार फिर साधु उसे निकालने लगा तो एक दर्शक ने कहा—"महाराज जब बिच्छू बार-बार आपको काट लेता है तो आप ही क्यों उसे बचाने पर तुले हैं ?"

साधु बोला—"डंक मारना बिच्छू का स्वभाव है और उपकार करना मेरा धर्म है। जब वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ रहा तो मैं अपने धर्म को क्यों छोड़ूँ ?"

नीतिकारों ने भी अपने कथन से इस बात की पुष्टि की है कि किसी के दुर्व्यवहार का बदला सद्‌व्यवहार से देना चाहिए।

सज्जन-जन कबहूं न धरत दुर्जन-जन के बोल।
पत्थर मारो आम में फलहू देत अमोल॥

अपने को लोकोपयोगी बनाने की प्रवृत्ति मनुष्य में सदा से चली आई है। इस प्रवृत्ति के लोग कभी भी लोकोपकार के कार्य इसलिए नहीं करते कि उन्हें भी इस लोकोपकार का प्रतिदान मिले। लोग यात्रियों की सुविधा के लिए धर्मशालाएं बनवाते हैं; छात्रों को छात्रवृत्तियां देते हैं, गर्मियों में प्यासों को पानी पिलाने के लिए प्याऊ खुलवाते हैं; अकाल-पीड़ितों की मदद के लिए दौड़ते हैं; सो इसलिए नहीं कि उन्हें इसका कोई प्रतिदान मिलेगा, केवल [illegible] भावना से प्रेरित होकर वे ऐसा करते हैं।

है और अपनी शक्ति से वह दूसरों को दुःख देता है। इसके विपरीत एक सज्जन व्यक्ति की विद्या ज्ञान के लिए होती है, धन दूसरों की सहायता के लिए होता है और शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए होती है।

उपसंहार

- संसार में सबसे अधिक स्थायी वस्तु क्या है?
  'आशा' क्योंकि मनुष्य का सब-कुछ खो जाने पर भी आशा उसके साथ रहती है।
- संसार में सबसे अधिक शक्तिशाली वस्तु कौन-सी है?
  'ज़रूरत' जो जीवन के बड़े-से-बड़े खतरे का सामना करने के लिए मनुष्य को बाध्य करती है।
- संसार में सबसे सरल काम क्या है?
  दूसरों को उपदेश देना।
- संसार में सबसे कठिन कार्य कौन-सा है?
  अपने को पहचानना!
- यदि आप सत्यपरायणता का आचरण नहीं कर पाते हैं, तो भी सत्य पर से अपना विश्वास मत हटाने दीजिए। फिर आप स्वयं ही सत्याचरण करने लगेंगे।
- सत्य से मनुष्य को अटूट बल, साहस और निर्भयता मिलती है।
- घृणा को दूर करने के लिए घृणा मत कीजिए। घृणा प्रेम से दूर होती है।
- मनुष्य को ईश्वर की सबसे बड़ी देन 'विवेक' है। कभी अपने विवेक को कुण्ठित मत होने दीजिए।

जो कुछ विवेचन इस सन्दर्भ में हम यहाँ कर रहे हैं वह कोई बहुत गहरा विषय नहीं, रात-दिन के लोक-व्यवहार का विषय है। गहराई से सोचने की बात सिर्फ़ इतनी है कि यदि किसी व्यक्ति के अवाञ्छित या असामाजिक व्यवहार से हमारे मन में प्रतिक्रियात्मक भावनाएँ पैदा होती हैं तो उन पर हमें क्षणिक क्षोभ भले ही हो किन्तु हमारे सदाचरण और मौलिक गुण उनसे प्रभावित न हों।

इसके अतिरिक्त एक तथ्य यह भी है कि संसार में सभी तरह के लोग हैं—परोपकारी भी हैं, अहसान-फ़रामोश भी हैं, धोखेबाज और बेईमान भी हैं, आदर्शवादी और महापुरुष भी हैं। सभी तरह के लोग सदा से रहे हैं और सदा रहेंगे। समाज में रहते हुए सभी से वास्ता भी पड़ता है। अपनी कल्पना का संसार आज तक कोई महापुरुष नहीं बना पाया है। अब यह आपका खुद का देखना है कि किस पक्ष को ग्रहण करते हैं और स्थायित्व, शान्ति और आनन्द कहाँ है।

कई बार लोग समाज-प्रताड़ित होकर जैसे को तैसा की नीति अपना लेते हैं अथवा अपनाने पर जोर देते हैं। 'नेकी कर और कुएँ में डाल' की कहावत को वे कोरी मूर्खता समझते हैं। ऐसे व्यक्ति

हमारे जीवन की छोटी-छोटी समस्यायें हमारे सम्मुख अपना विशाल रूप धारण कर हमें सदैव भयभीत करती रहती हैं। भय-ग्रस्त और चिन्तित अवस्था में हम उनके वास्तविक रूप की क्षुद्रता को समझ भी नहीं पाते और हम सदैव दुःखी रहते हैं। डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा ने इन समस्याओं का सीधा-सादा हल पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।